स्नेह-बंधन

(ऐतिहासिक-नाटक)

लेखक—
श्री 'व्यथित-हृदय'

प्रकाशक—
ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर ।

बारह आने

प्रकाशक—
देवकुमार मिश्र,
ग्रंथमाला-कार्य्यालय
बाँकीपुर



मुद्रक—
वी० के० शास्त्री;
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, काशी ।

पात्र-सूची



१. प्रतापसिंह—मेवाड़ के राणा

२. जगमल—प्रतापसिंह का सौतेला भाई

३. शक्तसिंह—प्रताप का भाई

४. अमरसिंह—प्रतापसिंह का पुत्र

५. चन्दावत—प्रजा का नायक

६. वीर कुमार—चन्दावत का पुत्र

७. रेणुका—स्वाधीनता की एक पुजारिणी

८. कुशला—प्रेमसिंह की स्त्री

९. प्रेमसिंह }
१०. गजसिंह } जगमल के चापलूस सर्दार

११. अकबर—मुग़ल-सम्राट्

१२. मानसिंह—मुग़ल-सेनापति

१३. सलीम—अकबर का पुत्र

और

[प्रहरी, किसान, गुप्तचर, भिखारिणी]



स्नेह-बन्धन

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुर में जगमल का विलास भवन

समय–अर्द्धरात्रि

[जगमल शराब के मदमें बेसुध पलँग पर पडा है। नैपथ्य से जीवन-गान की ध्वनि आरही है।]

** जीवन गान **

आज मेरे प्राण जागो !
प्रात से उन्मुक्त, सुरभित, सरस, कुसुमित गान जागो !
दासता तमको जगा कर नियति निशि-शृंगार लाई;
साधना-दिनकर, जगत में कमलिनी वन मान जागो !
गन्ध मादक से अलस हो प्राण-जागृति सो रही है !
त्याग वीणा पर सुरीले गान-जीवन-तान जागो !

[गान बन्द होता है। जगमल कुछ सुधमें आकर आश्चर्य-चकित हो उठता है।]

जगमल—अरे ! यह कौन गा रहा था ! इसके संगीत के एक एक स्वर तो मेरे हृदय में काँटे की भाँति चुभ रहे हैं। ओह ! मेरी मधुर निद्रा का वह शान्त समुद्र ! मेरे सुनहले स्वप्नों का वह अपूर्व संसार ! अकृत्रिम सौन्दर्य से जगमगाती हुई अप्सरायें आती थीं, और मेरे सामने ताल से नृत्य दिखाकर, ओठों से मदिरा की प्यालियाँ लगाकर, मुसुकुराती हुई चली जाती थीं ! किन्तु इसने-इस अभागे ने-अपने 'जागो' गान से मेरे शान्त समुद्र में ज्वार उत्पन्न करके उसे हल-चल का संसार बना दिया ! सुनहले स्वप्नों की लड़ी को तोड़ करके मुझे भयानक श्मशान की गोद में ला घसीटा ! मैं इसे नहीं बर्दास्त कर सकता, मदिरा की मीठी गोद में खेलने वाली निद्रा के संसार में आग लगने वाले को क्षमा नहीं कर सकता ! मेरा नाम है जगमल ! मैं निरन्तर मदिरा से खेलता हूँ, मदिरा की गोद में खेलने वाली निद्रा से अठखेलियाँ करता हूँ ! कौन है ? (क्रोध से) प्रहरी !

[प्रहरी का प्रवेश]

जगमल—प्रहरी ! तुमने भी सुना ! इस आधी रातके समय यह कौन गा रहा था ?

प्रहरी—हाँ महाराज, मैंने भी सुना ! वह रेणुका थी।

जगमल— रेणुका ? कौन रेणुका ? वही जिसका पति विजय विद्रोही बन गया था, और जो इस समय मेरे विरुद्ध षड़यंत्र करने के अपराध में श्मशान की अनन्त गोद में सो रहा है !

प्रहरी—हाँ महाराज ! वही रेणुका !

जगमल—किन्तु प्रहरी, वह इस समय क्यों गा रही थी ? क्या उसकी आँखों में नींद नहीं ? क्या उसने कभी अपने कानों से यह नहीं सुना, कि महाराज जगमल का विलास-भवन आधी रात के समय मदिरा के सागर में डुबकियाँ लगाता है।



प्रहरी—महाराज, वह विक्षिप्ता है। दिन में झाड़ियों और पर्वतों की कन्दराओं में छिपी रहती है। जब रात होती है, तब बाहर निकलती है, और अपने इसी जीवन-गान से समस्त उदयपुर को प्रति-ध्वनित कर देती है। यही नहीं, जब आकाश से चाँदनी बरसती है, तब वह अपने इसी जीवन-गान को मेदिनी पर, पत्थरों पर, और दीवालों पर रात भर लिखती फिरती है। उसका यह जीवन-गान उदयपुर के अनेक बालक-बालिकाओं के इस समय कंठ पर है।

जगमल (चौंककर)—तो क्या वह षड़यंत्र का बीज बो रही है? अवश्य! तभी तो उसका संगीत मेरे प्राणों पर बर्छियाँ चला रहा है! प्रहरी! वह अपराधिनी है। उसने महाराज जगमल की सुकुमार और वैभवमयी निद्रा में आग लगाई है। जाओ, उसे दण्ड दो, उसके विक्षिप्त जीवन का अन्त करके उसे भी विजय के पास पहुँचा दो! जान पड़ता है, स्वामी के वियोग से बेचारी उन्मत्त बन गई है।

[प्रहरी का प्रस्थान]

जगमल (स्वगत)—मेरा नाम जगमल है। मैं चित्तौर का राज मुकुट हूँ। मदिरा मेरा संसार है। विलास मेरा जीवन है। मधुर संगीत, जो जगत की सुन्दरियों के ओठों को छूकर बाहर निकलते हैं, मेरे प्राणों की बस्ती हैं। चाहे कोई हो, स्त्री या पुरुष, बाल या वृद्ध, जो मेरे इस संसार में आग लगाने का प्रयत्न करेगा, उसे मैं पहले ही जहन्नुम में पहुँचा दूँगा। विजय और रेणुका, दोनों षड़यंत्र की अग्नि जलाकर मुझे उसमें भस्म करना चाहते थे; किन्तु बरसाती पतिंगों की भाँति स्वयं उसमें जलकर भस्म हो गये! क्यों न हो? चित्तौर के महाराणा जगमल के प्रताप-गौरव का कुछ प्रभाव तो होना चाहिये!

[जगमल बड़े जोर से अट्टहास करता है और फिर पलँग पर सो जाता है।]

[पट परिवर्तन]

——*——

दूसरा दृश्य

स्थान—चन्दावत का घर

समय—दोपहर

[चन्दावत अपने घर के एक जनशून्य कक्ष में बैठ कर खिड़की से आकाश की ओर देख रहे हैं ।]

चन्दावत—(स्वगत)—निर्मल और स्वच्छ आकाश पर बादलों के काले-काले टुकड़े ! दो पहर के सूर्य के अस्तित्व के सम्मुख जगत पर एक धूमिल अंधकार का पर्दा ! क्या तेजवान सूर्य में इतना साहस नहीं, कि वह बादलों के काले-काले टुकड़ों को उठाकर सर्वनाश के सागर में फेंकदे ? क्या उसमें इतनी शक्ति नहीं, कि वह धूमिल अन्धकार के पर्दे को फाड़ कर जगत को आलोक से हँसादे ? किन्तु नहीं, कदाचित् वह पवन देव की अनुकूल जागृति को प्राप्त करने के लिये साधना में रत हो ! तो क्या मुझे भी साधना करनी पड़ेगी, और करनी पड़ेगी समस्त मेवाड़ निवासियों को ? आकाश की भाँति ही आज उनके भी भाग्य पर तो बादलों के काले-काले टुकड़े छाये हुए हैं ! यही क्यों, चारों ओर आकाश से अंधकार भी तो बरस रहा है । न कहीं आशा की ज्योति है, न कहीं संबल का प्रकाश ! समस्त मेवाड़ दासता की गोद में जैसे सो रहा हो ! और उधर जगमल को जैसे इसकी कुछ चिन्ता ही नहीं । वह मेवाड़ के पवित्र राजमुकुट को अपने मस्तक पर रखकर शराब की प्यालियाँ ढुलकाने में लगा है ! बेचारा प्रताप ! उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र ! जगमल ने उसके राज्याधिकार पर डाका डाला है !

[दौड़कर वीरकुमार का प्रवेश]

वीरकुमार—पिताजी! आपने भी कुछ सुना! बेचारी रेणुका उदयपुर में घूम-घूम कर जीवन का गान सुना रही थी। न जाने किसने बेचारी की आज हत्या कर डाली!

चन्दावत (आश्चर्य स्वर में)—रेणुका की हत्या कर डाली! तुम्हें यह बात कैसे मालूम हुई कुमार!

वीरकुमार—मैंने शिकार के लिये एक शूकर का पीछा किया था। पर्वत के समीप जब पहुँचा, तब देखता हूँ, रेणुका का शव एक वृक्ष में बँधा है, और कुछ ग़रीब किसान उसके आस-पास खड़े होकर आँसू बहा रहे हैं?

चन्दावत—ग़रीब किसान रेणुका के शव पर क्यों न आँसू बहायें? वह उनकी कुटियों में प्रकाश बनकर चमकती थी, वह उनके प्राणों में आशा बन कर नाचती थी, और वह? वह उनकी धमनियों में रक्त बन कर दौड़ती थी! उसका जीवन-गान किसानों की झोपड़ियों में गूँजता है। लड़के उसे ईश्वर की प्रार्थना समझते हैं। स्त्रियाँ उसे धर्म का संगीत मानती हैं।

वीरकुमार—पिता जी, रेणुका बड़ी अच्छी थी। एक दिन वह एक वृक्ष के नीचे बैठ कर पत्तों का मुकुट बना रही थी। जब मैंने उससे पूछा, तू इसे क्या करेगी, तब उसने कहा, मैं अपने इस मुकुट को उसके मस्तक पर रक्खूँगी, जो मेवाड़ में स्वाधीनता का अमर-प्रकाश फैलायेगा, जो उसके दासता-अन्धकार को दूर करने के लिये मेवाड़ियों के प्राणों में एक नहीं, शत-शत सूर्य उत्पन्न करेगा!

चन्दावत—तुम सच कहते हो कुमार! मेवाड़ के स्वाधीनता की शराब पीकर वह उन्मादिनी बन गई थी। दिन हो या रात, संध्या हो या सबेरा, वह एक पागल साधिका की भाँति सदैव स्वाधीनता का महा-मंत्र जगाया करती थी। चित्तौर के दुर्दिन, उसके भाग्याकाश पर घिरी हुई काली-काली घटायें उसके हृदय में वेदना का ज्वार उठाती थीं। वह

चित्तौर के लिये रोती थीं, आसुओं के एक-एक बूँद में अपने प्राणों को बिखेरती थीं। अच्छा चलो कुमार, हम भी स्वाधीनता की ऐसी प्रबल साधिका के शव पर श्रद्धा के दो फूल चढ़ा आयें !

वीरकुमार—नहीं पिताजी, वहाँ आपको जाने की आवश्यकता नहीं ! ग़रीब किसान रेणुका का शव लेकर स्वयं आपके पास अब आते ही होंगे !

चन्दावत—(करुणा के स्वर में)--बेचारे ग़रीब किसान ! रेणुका में कितनी अपार भक्ति रखते हैं। वह उन्हें दुख की भयंकर रात के पश्चात् बाल-सूर्य के दर्शन का आश्वासन दिलाती थी।

[रेणुका के शव के साथ चार किसानों का प्रवेश]

पहला किसान (शव भूमि पर रखकर)--कृष्ण जी, हम ग़रीब किसानों की ओर से मेवाड़ की राज्य सत्ता के लिये यह अन्तिम बलिदान है। अब हम लोग न मेवाड़ की पृथ्वी पर रहेंगे, और न उसकी विलासिनी सत्ता के लिये अपना बलिदान ही चढ़ायेंगे !

दूसरा किसान—हाँ कृष्ण जी, अब हम लोग बिलकुल कँगले बन गये। रेणुका का आश्वासन हमारे लिये 'सुख' और 'वैभव' से भी अधिक सुखप्रद था। किन्तु हाय, आज वह भी छिन गया। सूखी और कुचली हुई हड्डियों में रमनेवाला प्राण भी यदि बाहर निकाल लिया जाय, तो फिर ढाँचा कैसे खड़ा रह सकता है !

तीसरा किसान—अब हम लोग इस पातकी अत्याचार को नहीं सह सकते कृष्ण जी ! मेवाड़ के वर्त्तमान महाराणा जगमल अपने फौलादी पंजो को फैलाकर जितनी मांस की बोटियाँ नोचनी थीं, नोच चुके ! अब सूखी हुई हड्डियों में चिमटी हुई ये थोड़ी सी मांस-पेशियाँ उन्हें अपना जोश दिखायेंगी। वे भी अब सदा के लिये यह समझ जायँगे, कि ग़रीबों के हृदय का जीता जागता एक बूँद रक्त कभी-कभी महाशक्ति की सृष्टि करता है।

चौथा किसान—हाँ कृष्णजी, हम रेणुका के बलिदान को कभी न भूल सकेंगे। महाराज जगमल ने इसके रक्त से अपने अत्याचार की मेदिनी को सींचकर अपने ही सर्वनाश का बीज बोया है।

चन्दावत—धीरज धरो भाइयों ! विपत्ति और अत्याचार की आग जब धधक कर जलती हो, तब मनुष्य को धैर्य ही की शीतल छाया का सहारा लेना चाहिये। तुम समझते हो, रेणुका और विजय का बलिदान व्यर्थ जायगा ! नहीं, प्रकृति तुम्हारे बलिदानों का मूल्य समझती है, वह इस समय कंगालिनी अवश्य है, किन्तु वह कभी तुम्हारे बलिदानों का मूल्य अवश्य चुकायेगी !

पहला किसान—तो हम लोगों को क्या करना चाहिये कृष्णजी !

चन्दावत—अत्याचार और पशुता के धधकते हुये अग्निकुण्ड में अपने निरपराध भाइयों का आहुति दान ! लेजावो, रेणुका के शव को श्मशान में लेजावो, और उसे जलाकर उसकी राख की वेदिका पर बैठकर मंगल गान गावो ! कदाचित रेणुका का बलिदान अब अत्याचार का अन्त ही कर डालेगा। [किसानों का शव के साथ प्रस्थान]

चन्दावत (स्वगत)—जगमल ! विलासी जगमल !! चित्तौर के पवित्र राजमुकुट को अपने पापों से कलंकित करने वाला कायर जगमल !!! उससे रेणुका का जीवन-गान भी न सुना गया ! उसके पति विजय को सर्वनाश की धूल में मिला कर कदाचित् उसकी राक्षसी हिंसा नहीं शान्त होसकी थी! इसीलिये उसने उसे भी उसकी भेंट चढ़ादी। किन्तु कदाचित् रेणुका के रक्तने उसके पाप-घट को संपूर्ण कर दिया है। वह अब शीघ्र फूटना ही चाहता है। मेवाड़ के लिये सचमुच वह मंगल दिवस होगा, जिस दिन जगमल के पापों का अन्त होगा ! मेवाड़ की मही माता ! क्या तू मेवाड़ियों के मंगल-दिवस को उनके अधिक सन्निकट कर सकेगी !!

[चन्दावत सोचते सोचते गंभीर सागर में निमग्न हो उठते हैं।]

[पट परिवर्त्तन]

——*——

तीसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर में, एक राजकीय वाटिका

समय—संध्या

[जगमल के चापलूस सर्दार प्रेमसिंह और गजसिंह एक वृक्ष के नीचे बैठकर मनो-विनोद कर रहे हैं ।]

प्रेमसिंह—भाई, महाराज जगमल, प्रलयकाल तक संसार में जीते रहें । आज तक मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर उनके जैसा महाराणा कोई नहीं बैठा ! देखो न चारों ओर सुख ही सुख !! ऐसा जान पड़ता है, मानों बूढ़े विधाता ने प्रसन्न होकर सदा के लिए सुख का सावन लगा रक्खा हो !

गजसिंह—किन्तु तुम निरे बुद्धू हो ! तुमसे कुछ कहते तो बनता नहीं । तुम्हें यहाँ यह कहना चाहिए था, कि महाराज जगमल प्रलयकाल तक मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर बने रहें । यही क्यों, मेवाड़ का राजमुकुट प्रलय तक उनके मस्तक पर बना रहे । तुम जानते नहीं, संसार में राजमुकुट ही की गरिमा है । जब तक मस्तक पर राजमुकुट, तब तक महाराणा, महीपति, भूपति, प्रजापति, और न जाने क्या-क्या ? किन्तु राजमुकुट के अभाव में जानते हो क्या ? राह का भिखारी, पथ का काँटा, गली-कूँचे का फक़ीर !

प्रेम—हाँ जी, सचमुच तुम बावन तोले पाव रत्ती की बात कर रहे हो ! देखो, मुझमें और महाराज जगमल में अन्तर ही क्या है ? केवल यही न, कि उनके मस्तक पर राजमुकुट है ! इसी से हम लोग उन्हें महाराज कहते हैं, और उनके आदेशों पर दिन रात कठपुतलियों की भाँति चिहकते फिरते हैं ।

गजसिंह—तो क्या मैं कभी असत्य कहता हूँ। नपी-तुली बात कहना तो मैंने अपने बचपन से ही सीखा है। महाराज जगमल केवल इसीलिये अपने प्रधान मंत्रियों से भी अधिक मेरा सम्मान करते हैं। उनकी जो बात कोई नहीं जानता, उसे मैं जानता हूँ। वह अपनी गुप्त से गुप्त बात मुझी पर प्रगट करते हैं। उनका मुझपर अटूट विश्वास है।

प्रेमसिंह—बिलकुल झूठ ! मैं इसे कदापि नहीं मान सकता। महाराज जगमल, तुम पर नहीं, मुझ पर अधिक विश्वास करते हैं। मैं उनके अन्तःपुर में रहता हूँ, उनकी रानियों से निःसंकोच बात करता हूँ। इतना ही नहीं, जब कभी आवश्यकता पड़ती है, तब उनके साथ बाहर भी जाता हूँ। यदि तुम कभी अन्तःपुर में प्रवेश करने का प्रयत्न करो, तब देखूँ महाराज जगमल का विश्वास तुम पर कहाँ तक स्थिर रहता है!

गजसिंह—मुझे उसकी आवश्यकता नहीं ! वह विश्वास तुम्हीं को मुबारक रहे। मैं तो वीर हूँ, राजनीतिक योद्धा हूँ। मुझे वीरों का सा विश्वास चाहिये। अभी उस दिन रात में महाराज जगमल के केवल संकेत मात्र पर मैंने...............।

प्रेमसिंह—किन्तु तुम चुप क्यों हो गये ? आखिर सुनूँ तो, उस दिनरात में महाराज जगमल के केवल संकेत मात्र पर तुमने क्या किया ? न बताओगे ? क्यों न हो, लज्जा लगती है ! एक चुहिया मार डाली थी न ?

गजसिंह—कायर कहीं का ! चुहिया मारना तो जगत में तुम्हारे ही भाग्य में लिखा है। महाराज के अन्तःपुर में रह कर चुहिया न मारेगा तो करेगा क्या ? जैसा स्वयं है, वैसा दूसरों को भी समझता है।

प्रेमसिंह—वाह, इतने ही में भयानक भुजंग की भाँति फुफकार उठे ! अच्छा भाई, मैं कहता हूँ, तुमने चुहिया नहीं मारी, सिंहिनी का शिकार किया था। अब तो प्रसन्न हो !

गजसिंह—हाँ, हाँ, तो क्या इसमें अत्युक्ति है! मैंने वास्तव में सिंहीनी ही का शिकार किया था। यदि बात किसी पर प्रकट हो जाय, तो जानते हो क्या हो? समस्त मेवाड़ में आग लग जाय। अभागी रेणुका! उसे तुम क्या किसी सिंहिनी से कम समझते हो?

प्रेमसिंह—तो क्या रेणुका की हत्या का पुण्य तुम्हीं को प्राप्त हुआ था। सचमुच तब तो तुम बड़े शूर-वीर हो। महाराज जगमल की ओर से तुम्हें पुरस्कार भी अधिक मिला होगा। किन्तु तुमने रेणुका की हत्या किस भाँति की थी? ज़रा तुम्हारे गुरु मंत्र को मैं भी तो सुनूँ!

गजसिंह—मेरा गुरु मंत्र ऐसा साधारण नहीं, कि मैं तुम्हें यों ही बता दूँ! उसके लिये तुम्हें गुरुतर गुरु-दक्षिणा देनी होगी!

प्रेमसिंह—गुरुदक्षिणा! गुरुदक्षिणा देने के लिये यहाँ मेरे पास रक्खा ही क्या है? (कुछ सोचकर) किन्तु नहीं, मैं तुम्हें गुरु दक्षिणा दूँगा—हृदय की संपूर्ण ईर्षालु भावनाओं को त्याग कर आज से तुम्हें गुरु कहा करूँगा! कहो, ऐसी अमूल्य गुरु-दक्षिणा तो तुम्हें सात जन्म में भी किसी से न मिली होगी।

गजसिंह—क्यों न हो? तुम महाराज जगमल के वैभव-भवन में रहते हो न! फिर अमूल्य गुरु-दक्षिणा तुम न दोगे तो देगा कौन? अच्छा तो शिष्य-प्रवर जी, अब गुरु मंत्र सुनने के लिये तैयार हो जाइये!

[गजसिंह प्रेमसिंह का गला पकड़ कर दबाना चाहता है।
इसी समय एक भिखारिनी का प्रवेश।]

गजसिंह (गला छोड़ कर)—किन्तु नहीं, वह देखो, तुम्हारे सौभाग्य से एक भिखारिनी आ गई। जाओ उसे पकड़ लाओ। फिर मैं तुम्हें बता दूँगा, कि मैंने रेणुका की हत्या किस भाँति की थी।

[प्रेमसिंह भिखारिनी को पकड़ कर लाता है।]

भिखारिनी—मुझे छोड़ दो। मुझ ग़रीबिनी पर अत्याचार न करो। मेरा छोटा बच्चा भूख से झोपड़ी में छटपटाता होगा! संध्या हो गई! हाय!

प्रेमसिंह—चुप रहो। आज मेरा मंत्र-दीक्षा का दिवस है। मैंने अपने जीवन की सब से महान् वस्तु को खोकर इसे प्राप्त किया है। तुम्हें इसकी पूर्ति के लिये रेणुका बनना पड़ेगा! बोलो तैयार हो, या नहीं?

भिखारिनी—(करुणा के स्वर में)—मुझे न सताओ भाई, जाने दो। रेणुका मर गई। क्या मुझे भी मारना चाहते हो? नहीं, नहीं, मुझ अभागिनी पर कृपा करो। मेरे अबोध बच्चे के प्राण मेरी प्रतीक्षा करते होंगे! एक बार मुझे उसका गला दुग्ध की धार से सींच तो लेने दो!

गजसिंह—तू सच-मुच पर्वत की भाँति जड़, स्थिरबुद्धि और कायर है। लेजा इसे, इस सामने वाले वृक्ष में कस कर बाँध दे। फिर मैं तुम्हें यह बता दूँगा, कि मैंने रेणुका की हत्या किस प्रकार की थी!

[प्रेमसिंह भिखारिनी को वृक्ष से बाँधता है। वह चिल्लाती है।
एक दूसरी ओर से कुमार शक्त का प्रवेश।]

गजसिंह (शक्त को देख कर)—अरे सर्वनाश हो गया! जान पड़ता है, रेणुका की मृत्यु का कृत्रिम अभिनय, आज हम दोनों की वास्तविक मृत्यु का अभिनय बन जायगा। देखो कुमार! शक्त इसी ओर आरहे हैं। यदि उन्होंने हम दोनों को आते देख लिया तो फिर तो प्राणों पर तुषार बरसे विना कदापि न रहेगी!

प्रेमसिंह—किन्तु गुरुवरजी, आप तो राजनीतिक योद्धा हैं, और हैं महाराज जगमल के कृपा-पात्र गुप्तचर! फिर कुमार शक्त से आपको इतना भयभीत होने की क्या आवश्यकता?

गजसिंह—अज्ञान कहीं का! चल शीघ्र यहाँ से भाग! नहीं तो आज घरवाली के भाल का सिन्दूर धुले विना कदापि न रहेगा!

[दोनों दूसरी ओर से भागते हैं और शक्त सिंह वृक्ष के समीप आते हैं।]

शक्तसिंह (भिखारिनी को देखकर)—अरे निरपराध अबला! भाग्य की मारी हुई दर-दर भिक्षा माँग रही थी। न जाने किस नराधम ने उसे वृक्ष से बाँध दिया। विचित्र दृश्य है। आजकल मेवाड़ में जिस

ओर देखिये, उसी ओर अन्धेर, उसी ओर उपद्रव, उसी ओर राक्षसी हिंसा काण्ड !! रोदन, चिल्लाहट, और करुणा के अतिरिक्त कहीं कुछ दिखाई ही नहीं देता। भगवान ही मेवाड़ की रक्षा करें ! [दौड़कर भिखारिनी का बन्धन खोलते हैं।] कहो बहन, तुम्हें कौन इस वृक्ष से बाँध गया? क्या तुम मुझे उसका नाम बता सकती हो?

भिखारिनी (कंपित स्वर में)—नहीं, मैं उसे नहीं पहचानती। हाँ इतना कह सकती हूँ, वे दोनों सिपाही थे। मैं अपने मार्ग पर चली जारही थी। मुझे पकड़ लाये। कहने लगे, तुम्हें रेणुका बनना पड़ेगा। मैं रोने लगी! मुझे एकने वृक्ष से बाँध दिया, और दूसरा मेरा गला दबाना चाहता था। किन्तु सौभाग्य से गला दबाने के पहले आप आ पहुँचे।

शक्तसिंह—(क्रोध को दबाकर)–रेणुका की हत्या ! जान पड़ता है, रेणुका की हत्या करनेवालों ने अपने मनो-विनोद के लिए यह अभिनय रचा था ! अच्छा बहन, अब तू जा ! तुझे कोई न बोल सकेगा !

[भिखारिनी का प्रस्थान, शक्तसिंह क्रोध की गंभीर अवस्था में कुछ सोचते हैं]

[पट-परिवर्त्तन]



चौथा दृश्य

स्थान—उदयपुर, एक छोटा सा वन

समय–प्रभात

[कुमार शक्त एक शिलाखण्ड पर बैठे हुए धीरे-धीरे गारहे हैं]

* गाना *

क्या न पावन नीर सुरसरि-सा सुहृद इतिहास होगा?
स्वर्ग की नव ज्योतियों का पुण्यमय आभास होगा?
रो रही है मेदिनी दुख आँसुओं के बाण खाकर;
क्या न हिंसा, क्रूरता के जालका द्रुत नाश होगा?
सूर्य जागृति का छिपा, जीवन-दिवस तम-पूर्ण सा है;
क्या न निर्मल, ज्योति-सस्मित भाग्य का आकाश होगा?

[चन्दावत का प्रवेश]

कुमार शक्त (चन्दावत को देखकर)—कौन? चन्दावत कृष्णजी! आइये! इस ओर कहाँ से आपड़े? आज बहुत दिनों के पश्चात् आपके दर्शन हुए हैं! अहो भाग्य!

चन्दावत—क्या करूँ? जब बस्ती की गोद में पाप और कलंक खेल रहा है, तब कुमार शक्त की भाँति शान्ति ग्रहण करने के लिये मैं भी यहाँ वन में चला आया। किन्तु यह तो बताइये कुमार, आप अभी गा क्या रहे थे?

शक्त—क्या गाऊँ कृष्णजी, वह दुख की एक रागिनी थी। अभागे और सताये हुए मनुष्यों की ओर से हृदय का एक मार्मिक क्रन्दन था। बस्ती में, राजमहल में, उसे किसे सुनाता? वहाँ सुनने ही वाला कौन

है? वहाँ तो दिन-रात मदिरा की प्यालियाँ खनकती हैं, नूपुरों की झँकार होती है! अफसोस, आज मेवाड़ की राज्य-सत्ता का इतिहास ही बदल गया है!

चन्दावत—अवश्य बदल गया है कुमार! यदि बदल न गया होता तो आज जब कि चित्तौर की मही-माता विधवा-सरीखी सौभाग्य-हीन बन गई है, यही नहीं और जब मेवाड़ की प्रजा के ऊपर चारों ओर से भयंकर डाके पड़ रहे हैं, मेवाड़ के राजवंश के कुमार के मुखसे निराशा की ऐसी कातर बातें सुनने को कदापि न मिलतीं! सचमुच अब पूर्व का सूर्य पश्चिम में उदय होने लगा है!

शक्त—राजवंश की बात चलाकर चित्त को काँटो से न खुरेचिये चन्दावतजी! आज मेरे जीवन का यही सबसे बड़ा पाप है, कि मैं राजवंश में पैदा हुआ हूँ। यदि मैं मेवाड़ के राजवंश में न पैदा हुआ होता, तो आज मेरे हृदय का ज्वार भीतर ही भीतर उफना कर शान्त न हो जाता! आज मैं मेवाड़ की समस्त प्रजा में जीवन और जागृति का मंत्र फूँककर चित्तौर के मंगल दिवस के लिये तैयारी करता।

चन्दावत-किन्तु चित्तौर का मंगल दिवस अभी बहुत दूर है कुमार! उसके लिये चिन्ता करनी भी व्यर्थ है! अभी तो हमें मेवाड़ के उस पवित्र राजमुकुट को जो रेणुका और विजय ऐसे महान् बलिदानों के रक्त से रँगा जा रहा है, कलंकित होने से बचाना चाहिए। बिना उसकी रक्षा किये हुए हम चित्तौर की स्वाधीनता के लिये कुछ भी न कर सकेंगे।

शक्त—आपकी बातों का तात्पर्य मैं नहीं समझ सका कृष्णजी!

चन्दावत—यही, कि जगमल के पाप पूर्ण कृत्यों से मेवाड़ का पवित्र राजमुकुट कलंकित होता जा रहा है; उसके गौरवमय इतिहास के सुनहले अक्षर काले पड़ते जारहे हैं! इसलिये सर्व प्रथम उसकी पवित्रता को बचाइये, उसके गौरव-इतिहास की रक्षा कीजिये!

शक्त—तो आपका यह तात्पर्य है, कि मैं राजभवन में विद्रोह की आग लगाऊँ! राज्य और वैभव के लिये अपने हाथों से अपने ही भाइयों का रक्त-पात करूँ! नहीं, कृष्णजी, मुझसे यह न हो सकेगा! मैं राज्यसत्ता की लालसा की वेदी पर अपनी मानवता का गला नहीं घोंट सकता!

चन्द्रावत—मानवता का गला घोंटने को कौन कहता है कुमार! मेरे कहने का तात्पर्य तो केवल इतना ही है, कि मानवता की रक्षा कीजिये! अन्याय की आग में जलती हुई प्रजा के करुण-क्रन्दन को कानों से नहीं, हृदय और प्राणों से सुनिये!! विलास की गोद में बेसुध सोई हुई चेतना को जगाइए!!! जगाइये अपने और मेरे लिए नहीं, प्यारे मेवाड़ के लिए! देखिये मेवाड़ के शुभ्र ललाट पर दासता के कलंक को देखकर आकाश भी शोक से काला पड़ गया है!

शक्त—आप किससे इन बातों को कह रहे हैं, कृष्णजी! उससे, जो चित्तौड़ की दुरवस्था को देखकर दिन-रात प्राणों में आँसू बहाया करता है, जो चिन्ता की समाधि पर बैठकर सदैव दुःख की रागिनी गाया करता है, और जो प्रजा की सुख-शान्ति की वेदिका पर अपने प्राणों की बलि चढ़ाने के लिये तैयार रहता है। किन्तु अफसोस, कुछ समझ में ही नहीं आता! रहस्य के काले अन्धकार को भेदने के लिये चेतना का कोई सूर्य कहीं दिखाई ही नहीं देता!!

चन्द्रावत—दिखाई देता है कुमार! आँखों में प्रकाश होना चाहिये! उसका आलोक कितना दिव्य, कितना सुन्दर, और कितना सुस्पष्ट है! किन्तु नहीं, अभी तो यह उसकी प्राची की गोद में प्रथम मुसुकुराहट की झलक मात्र है। किन्तु कुमार! बादलों के काले-काले टुकड़े धीरे-धीरे उसकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। वह विक्षिप्त है—मेवाड़ की दासता से। वह आनन्द विभोर है—प्रजा की वत्सलता और भक्ति से। कहीं उसकी बेसुधी

से बादलों के काले-काले ये टुकड़े उसके समीप जाकर उसकी दिव्य ज्योति को ढँक न लें !

शक्त—मैं नहीं समझ सका कृष्णजी, कि आपके बाणों का लक्ष्य किस ओर है ?

चन्दावत—मेरा लक्ष्य ! क्या अब भी न समझ सके कुमार ! उसी ओर, जहाँ मेवाड़ की आशा झोपड़ी बना कर अपना जीवन बिता रही है, जहाँ मेवाड़ की स्वाधीनता भिखारिनी की भाँति अपनी विपत्तियों के दिन गिन रही है, और जहाँ प्रजा की वत्सलता हृदय-उद्यान के पुष्पों की माला गूंथ रही है !

शक्त—फिर वही रहस्य की बात, फिर बुद्धि के लिये वही उलझन और फिर वही वाक्-चातुर्य ! मैं तो आपकी रहस्यमयी बातों से परेशान हो उठा कृष्णजी !

चन्दावत—नहीं कुमार, आप भूल रहे हैं। रहस्य, उलझन और वाक्-चातुर्य तीनों में से एक भी नहीं। सीधी सादी बात है—मृत्यु की भाँति सत्य और आकाश की भाँति स्थिर है ! क्या उसका आलोक आपको नहीं दिखाई दे रहा है ? वह मेवाड़ का सूर्य है। वह एक हो करके भी असंख्य मेवाड़ियों के हृदय में जीवन और प्राण बनकर विचरण कर रहा है। उसका प्रताप अजेय है, उसका पौरुष गेय है !

शक्त—भैया प्रताप ! सचमुच चन्दावतजी, वे तुहिन से ढँके हुए मेवाड़ के लिये प्राची की गोद से बाल-सूर्य की भाँति उदय हो रहे हैं। उनकी एक-एक सांस में मेवाड़ की स्वाधीनता निवास करती है, उनके हृदय के एक-एक शब्द में राजपूतों का अभिमान हँसता है ! किन्तु अफसोस ! वे इस समय निःसंबल हैं ! निरुपाय हैं !! महाराज जगमल ने उनके स्वत्त्व-राज्य पर अधिकार करके उनकी आशाओं के साथ ही साथ मेवाड़ की आशाओं का भी अन्त कर दिया है।



चन्द्रावत—जगमल और मेवाड़ की आशाओं का अन्त ! यह नहीं हो सकता कुमार ! मेवाड़ की प्रजा मेवाड़ की आशाओं का अन्त कर देने वाले ही का अन्त कर देगी। वह सम्राट् को अपना प्रतिनिधि चुन कर अपने मानवी अधिकारों से अवश्य हाथ धो बैठती है, किन्तु शक्ति-देवता उसीके वशीभूत रहते हैं। वह शक्ति-देवता के प्रसाद से चाहे जिस स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर दे ! चाहे जिस उपाधि-धारी सम्राट् को पथ का भिखारी बना दे !!

शक्त—तो क्या मेवाड़ की प्रजा मेवाड़ के महाराणा के प्रति विद्रोह करेगी ?

चन्द्रावत—मेवाड़ के महाराणा ! कौन मेवाड़ के महाराणा !! महाराज जगमल !! जो विलास की गोद में मदिरा से अठखेलियाँ किया करते हैं, जो स्वेच्छाचारी शासन की रक्त-रंजित-वेदिका पर बैठ कर प्रजा के स्वत्वों की आहुति दिया करते हैं !! उन्हें सम्राट् मानता ही कौन है कुमार ! सम्राट् तो हैं प्रताप, जो प्राणों में आत्मा की भाँति निवास करते हैं, जो आँखों में ज्योति की भाँति प्रकाश दौड़ाते हैं ! कोई प्रजा के हृदय में प्रवेश करके देखे तो ! एक-एक कोने में श्रद्धा और भक्ति मुसुकुराती हुई दिखाई देगी ! किन्तु क्या प्रजा के इस मंगल महोत्सव में कुमार शक्त भी कुछ भाग ले सकेंगे !

शक्त—अवश्य ! जनता-जनार्दन की प्रसन्नता के लिये निरन्तर प्राणों की बलि उपस्थित है कृष्णजी ! और फिर भैया प्रताप को सम्राट् बनाने का उद्योग ! उसमें कौन न भाग लेगा। वे मेवाड़ की उज्वल आशा हैं, मेवाड़ की गौरव-कामना उन्हीं के प्राणों में निवास करती है। आज मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं—वर्षों की दबी हुई अभिलाषा न जाने किस पुण्य-शक्ति से प्रकट हुई है। देखें वह मंगल दिवस कब आता है, कल्याण की वह वैभवमय घड़ी कब अपनी छटा बिखेरती है !

चन्दावत—बहुत शीघ्र ! कार्य का श्रीगणेश हो गया है कुमार ! केवल आपकी शुभकामना की देर थी । देखें अन्याय और अत्याचार की आग जलाकर महाराज जगमल कब तक अपने को मेवाड़ का सम्राट् घोषित किये रहते हैं । कुपित प्रजा उन्हें अब शान्ति और सन्तोष की सांस न लेने देगी !

शक्त—भैय्या प्रताप ! मेवाड़ के सम्राट् ! सचमुच वह मंगल दिवस होगा ! चलिये कृष्ण जी, हम दोनों चलें और इस मङ्गल दिवस की पूर्ति के लिये अभी से उत्सव का साज सजायें !

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्त्तन]

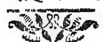
पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुर, जगमल की संगीत शाला

समय—रात्रि का प्रथम काल

[महाराज जगमल मदिरा की उन्मत्त अवस्था में बैठे हैं ।
चापलूस सर्दार जी-हुज़ूरी में लगे हैं ।]

जगमल (कुछ खीझकर)—तुम सब के सब अज्ञान हो । अरे मदिरा की इस गुलाबी वेला में राज्य और राजा के गुणों की प्रशंसा की क्या बात ? यहां प्रशंसा करो मदिरा की, गीत गावो शराब के प्यालों की । यह महाराज जगमल की संगीत शाला है, मधुरता इसका जीवन और विलास इसका वैभव है ।



गजसिंह—बिल्कुल ठीक ! यह चन्दावत के मल्ल-युद्ध का अखाड़ा तो है नहीं, कि दिन-रात ताल के कर्कश शब्दों से कान फोड़ा करो !

प्रेमसिंह—यहीं क्यों ? और यह पद्मिनी की सतीत्त्व रक्षा का रणस्थल तो है नहीं, कि तलवारों की झँकार से अमूल्य प्राणों को कँपाया करो !

जगमल—तुम दोनों की बुद्धि-कलिका पर काल ने कुपित होकर पाला गिरा दिया है। अरे बुद्धि के शत्रुओं, मदिरा के मधुर यौवन-काल में चन्दावत के नाम के कर्कश झँकोरों की क्या आवश्यकता ! हाँ, पद्मिनी का नाम मधुर अवश्य है, किन्तु उसके आगे तलवार की झँकार क्यों लगादो ? ओह, तेरा तो मस्तक ठनक उठा ! अच्छा, मधुर स्वर-लहरी में कोई उन्मादक गान तो सुनाओ !

* *गान* *

आज जीवन के अजिर में, छलक मधु-घट कौन लाई,
सुप्त प्यालों में सुनहली ज्योति है किसने जगाई ?
झाँकती मन मंजु मोखों से कौन उन्मादिनी सी ?
चाह से ले चाव हँस-हँस आज है किसने पिलाई ?
उड़ रही है उन्माद लेकर कौन वन वेला गुलाबी,
कामना की हाट मेरी आज है किसने सजाई ?

[गान बन्द होता है।]

जगमल—वाह ! मधुर-संगीत की एकही थपकी ने मन की समस्त आकुलता को जैसे सदा के लिये सुला सा दिया हो ! सचमुच मदिरा और विलास में मधुर-संगीत जीवन डालता है !

गजसिंह—इसमें क्या सन्देह ? मधुर-संगीत के अभाव में तो मदिरा और विलास का जीवन ही व्यर्थ है। यदि मदिरा के संसार में

मधुर-संगीत का राज्य न रहे तो फिर मनके कारागार में गुलाबी वेला को कैद करके लावे कौन ?

प्रेमसिंह—बिलकुल ठीक ! इसीसे तो मधुर संगीत के लिये खिलाड़ी ईश्वर के भी प्राण तरसते रहते हैं !

जगमल—पागल कहीं का ! फिर वही अज्ञानता ! अरे, यहाँ ईश्वर की क्या आवश्यकता ! ईश्वर तो बेचारे चन्दावत के ओठों पर टूटी हुई झोंपड़ी बना कर रहता है ! वही बार-बार ईश्वर की दुहाई देकर कहता है, अत्याचार को बन्द करो, ग़रीबों को न सताओ ! उससे कोई जाकर भला यह पूछता नहीं, कि राज्य-शासन और ईश्वर से क्या सम्बन्ध ?

एक सभासद्—कुछ नहीं ! राजा पृथ्वी का पति है, प्रजा का स्वामी है। वह चाहे जो करे ? इसमें ईश्वर को बोलने का अधिकार ही क्या है ! वह स्वामी है, अपने सुविस्तृत राज्य-आकाश का। यहाँ कोई रत्ती भर उसकी बात न मानेगा !

दूसरा सभासद्—और फिर ईश्वर कहाँ का न्यायी है ! वह भी तो दिन-रात अत्याचार की भट्टी जलाये रहता है। रोग से जर्जर वृद्ध पिता खाँसता हुआ बैठा रहता है, और प्रौढ़ पुत्र स्वर्ग के लिये प्रस्थान कर देता है। युवती स्त्री हृदय में सहस्रों कामनाओं को छिपाकर बैठी ही रहती है, और उसके भाल का सिन्दूर धुल जाता है। यह सब क्या है ? क्या यही ईश्वर का न्याय और धर्म है !! ज़रा आँखें खोलकर संसार में देखो तो ! चारों ओर ईश्वर के नाम पर हाय-तोबा मची हुई है !

गजसिंह—तुमलोगों ने भी खूब कही ! अरे न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म और शान्ति-अशान्ति से ईश्वर से तात्पर्य क्या ? वे तो मदिरा महारानी की गोद में बैठकर दिन-रात क्षीर-सागर में शयन किया करते हैं। यह तो संसारवालों की अज्ञानता है, जो वे न्याय और अन्याय का नगाड़ा बजाकर उनकी मधुर-निद्रा में बाधा उपस्थित किया करते हैं।

जगमल—चन्दावत, राजनीति और राज्यशासन के महत्त्व को



क्या जाने ? वह अपनी अज्ञानता की पथरीली सड़क पर ईश्वर को भी घसीटने का अक्षम्य अपराध करता है।

[नैपथ्य में भयानक शोर-गुल]

जगमल—(चौंककर)-अरे ! यह असंख्य मनुष्यों के एक-साथ ही बोलने का शब्द कहाँ से आ रहा है (ध्यान से सुनता है) यह तो निरन्तर समीप आता जा रहा है। क्या ईश्वर के अज्ञान-पुजारियों ने मेरी संगीत-शाला पर आक्रमण तो नहीं कर दिया ?

[दौड़कर प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी—महाराज, कुमार शक्त और चन्दावत की संरक्षता में विद्रोही प्रजा उभड़ कर इसी ओर बढ़ती चली आरही है। महाराणा प्रताप के जयजयकार से आकाश और मेदिनी काँप सी रही है। बच्चे, बूढ़े, जवान सभी एक-स्वर से कह रहे हैं, महाराणा प्रताप हैं, जगमल नहीं !!

जगमल—(उन्माद में)-सबके सब विद्रोही हैं, अज्ञान हैं। बकने दो उन्हें ! उन पागलों की व्यर्थ बकवाद से होता है क्या ? महाराज जगमल मेवाड़ के महाराणा हैं, महाराज जगमल !! संसार की कोई भी शक्ति उन्हें महाराणा के गौरवपद से नहीं हटा सकती, नहीं दूर कर सकती !!

[सहसा चन्दावत का प्रवेश]

चन्दावत—दूर कर सकती है ! मेवाड़ के मुकुटधारी राणा दूर कर सकती है !! ज़रा आँखों में चेतना का प्रकाश भर कर तो देखिये ! सारा मेवाड़, मेवाड़ ही क्यों, मेवाड़ की समस्त पृथ्वी और समस्त वन भी एक स्वर में चिल्ला रहे हैं—महाराणा, जगमल नहीं, प्रताप ! कानों के विलास-प्रिय पर्दों को खोल कर सुनिये। जनता-जनार्दन के चीत्कार से आकाश कंपित हो उठा है, पृथ्वी थर्रा सी गई है ! किसमें शक्ति है, जो उसकी गति का अवरोध कर सके, जो उसकी अभिलाषा पूर्ति में बाधा उपस्थित करने का साहस कर सके।

[चापलूस सर्दार और सभासद भयभीत हो उठते हैं]

चन्दावत—यह नाच-रंग और यह वैभव-विलास ! कौन करे ? मेवाड़ का महाराणा ! उस समय, जब मेवाड़ दासता के दुख से सिसक-सिसक कर रो रहा हो, जब मेवाड़ की मही-माता विधवा सरीखी श्रीहीन बन गई हो, और जब मेवाड़ की प्रजा अत्याचार के अग्निकुण्ड में जल कर आह क्रन्दन कर रही हो ! बहुत हो चुका, मेवाड़ के विलासी महाराणा, बहुत हो चुका ! अब आपका स्वेच्छाचारी शासन दानवों और दैत्यों की भाँति क्रूर बन कर प्रजा का रक्त-शोषण न कर सकेगा ! अब प्रजा जागृति के प्रकाश में खेल रही है, दासता की भयंकर वेदना उसके अंग-प्रत्यंग में पीड़ा उत्पन्न कर रही है। वह अब स्वतंत्रता की अमूल्य निधि निकालेगी, और निधि के लिये समुद्र का मंथन करेगी।

[जगमल सिर झुका लेता है]

चन्दावत—क्यों, बोलते क्यों नहीं, मेवाड़ के विलासी सम्राट् ! अच्छा न बोलो ! चुपचाप प्रायश्चित्त की गंगा में स्नान करो। प्रजा का राजसिंहासन और राजमुकुट उसके हाथों में देदो ! वह चाहे जिसे अपना सम्राट् बनाये, चाहे जिसे अपनी गौरव-कीर्त्ति का संरक्षक चुने ! तुम उसके योग्य नहीं ! तुमने चन्द्रमा की शुभ्र-ज्योति में कालिमा पोत दी है।

[जगमल सावधानी से मुकुट हाथ में पकड़ता है]

चन्दावत—बस रहने दो ! अपने रक्त रंजित हाथों से अब इस राज-मुकुट को कलंकित न करो—उसके कीर्ति-गौरव चन्द्र में श्यामता का कलंक न लगाओ। उसकी राजपूतों ने अपने प्राणों की बलि चढ़ाकर रक्षा की है, अपने स्त्री-पुत्रों की अत्याचार की अग्नि में आहुति देकर उसकी स्वर्ण-प्रभा को चमकाया है !! तुझे अधिकार नहीं, कि तू राजपूतों के पुण्यमय बलिदानों की आभा से प्रदीप्त राजमुकुट का कर से स्पर्श कर सके। तेरा स्पर्श मात्र उसके लिये दुस्साहस और अपमान का द्योतक है।

[जगमल चकित होकर चन्दावत की ओर देखता है।]

चन्दावत—मेरी ओर न देखो, विलास के दूत, मेरी ओर देखो ! तुम्हारी आँखों में हिंसा, क्रूरता और दानवपन झलक रहा है। तुमने प्रजा की अभिलाषाओं को कुचल कर, उसके गौरव इतिहास को धूल में मिला कर अपनी कामनाओं की बस्ती बसाई है। ऐसी बस्ती बसाई है, जिसके वक्षःस्थल पर प्रति-दिन क्रूरता अपना ताण्डव-नृत्य करती है, और तू उस भयानक नृत्य को जीवन का मधुर आनन्द समझता है। किन्तु आज वह आनन्द धूल में सोकर रहेगा, आज तेरा वह विलास-जीवन सदा के लिये अपने अस्तित्त्व से हाथ धोकर रहेगा।

[चन्दावत विलास सामग्रियों को पैरों से ठुकराते हैं।]

चन्दावत—वैभव और विलास की ये सामग्रियाँ ! इन्हींने तो महापतन का यह अभिनय किया है, इन्हींने तो बाप्पा के सीसौदिया वंश में जगमल ऐसे कायर और विलासी सम्राट् की सृष्टि की है। ये मनुष्य की मानवता को कुचल कर उसे अन्धा बना देती हैं ! हृदय में अत्याचार के प्रोत्साहन का बीज बोकर उसे अन्याय की दिशा की ओर लेजाती है। इन्हें तोड़ो, फोड़ो और हँसो, जगमल ! तुम भी मेरी ही भाँति विलास की इन वस्तुओं को पैरों से ठुकरा कर हँसो, गाओ और अट्टहास करो ! कदाचित् तुम्हारे अट्टहास को सुनकर विद्रोहिनी प्रजा तुम्हारे पूर्व अपराधों को क्षमा कर दे।

[जगमल दुख से कातर बन जाता है।]

चन्दावत—अरे, अभी तक तुम चुप हो। न हँसते हो न गाते हो, न अट्टहास करते हो !! अच्छा कुछ न करो। आँखे फाड़ कर रोओ, हृदय के सच्चे आँसुओं से अपने पापों को धोओ ! अरे ! यह तो तुम सचमुच रोने लगे ! सचमुच पापों की कालिमा को धोने के लिये तुम्हारा हृदय आँसुओं का सागर उलीचने लगा। हायरे विलास ! तूने आज बाप्पा की वीर-सन्तान को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया !!

जगमल—सचमुच, विलास ने मुझे अन्धा बना दिया था ! मदिरा ने मेरी चेतनारश्मियों को नष्ट कर मुझे श्मशान में ला घसीटा था। मैं अन्याय से खेलता था, अत्याचार से क्रीड़ा करता था ! मेरे चापलूस सर्दार ! नहीं, नहीं, मनुष्य के रूप में राक्षस ! मुझसे कहते थे यही जीवन है, और जीवन में यही एक सत्य है। किन्तु आज आपने सत्य और असत्य के रहस्य का उद्घाटन कर दिया कृष्णजी ! अटूट निर्झरिणी के समान आपकी वेगवती वाणी जिस प्रकार चल रही है, उसी प्रकार चलती चले, और मैं उसे तन्मय होकर सुनता जाऊँ ! प्रायश्चित्त के सागर में स्नान करने के लिये प्रस्थान करने वाली मेरी आत्मा उसे मुक्ति का संगीत समझ रही है।

चन्दावत—क्यों न हो ? विलास ने जीवन को धक्का दिया है, मदिरा ने हृदय में ठोकर मारी है। महापतन के द्वार पर जाकर अब जाना शेष ही कहाँ रहा ? अत्याचार और हिंसा की अग्नि में जले हुए मेवाड़ की राख को शरीर में लगा कर अब संन्यासी न बनोगे तो करोगे क्या ?

जगमल—चाहे जो कहिये कृष्ण जी, मेरे कान सब कुछ सुनेंगे ! सुनेंगे, इसलिये कि आपकी बातें मुझ भूले हुए को मार्ग बता रही हैं, अन्धकार में भटकते हुए मेरे प्राणों को चेतना का दीपक दिखा रही हैं ! तुम पुण्य के दूत हो, प्रकाश के सहचर हो ! तुम्हारी बातों में, तुम्हारी फटकार में मुझे अमरता की संगीत सुनाई दे रही है। ऐसी जीवन-रागिनी, ऐसा प्राण-राग, मैंने आज तक कभी नहीं सुना कृष्णजी ! तुम मुझे ख़ूब सुनाओ ! अपनी भर्त्सना और अपनी फटकार से मुझे उस संसार में पहुँचा दो, जहाँ पहुँच कर मैं धन्य हो जाऊँ, पाप-पुण्य के प्रपंच से मुक्त होकर अपने में लीन हो जाऊँ !

चन्दावत—अन्धकार के बाद ज्ञान के प्रकाश का उदय ! अच्छा ही हुआ, मेवाड़ के महाराणा, जो आप अपने अस्तित्त्व से परिचित हो गये ;

अच्छा तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ ! प्रार्थना करता हूँ, अपने लिये नहीं, मेवाड़ की अमर स्वाधीनता के लिये, प्रजा को दासता के पाशविकबन्धन से बचाने के लिये, चित्तौर की मही-माता के उद्धार के लिये !!! बोलिये, मेरे भूले हुए महाराणा, बोलिये !! आप मेरी प्रार्थना-इतिहास के महत्त्व को समझकर क्या अपना राज-मुकुट प्रताप के लिये दे सकेंगे ? क्या जननी–जन्मभूमि के कल्याण के लिये अपने स्वत्वों-अधिकारों का बलिदान कर सकेंगे ?

जगमल—क्यों नहीं ? प्रताप ! मेरा प्यारा भाई प्रताप ! वह शक्ति की प्रतिमा है, कर्त्तव्य की मूर्ति है। जागृति उसका जीवन है, स्वतंत्रता उसके जीवन का ध्येय है ! वह उदय होरहा है बाल–सूर्य की भाँति, वह जग रहा है जागृति की तरह। उसके रोम-रोम में, उसके अंग-अंग में मेवाड़ की भक्ति निवास करती है। उसकी एक-एक सांस में मेवाड़ का अभिमान हँसता है। मैं अत्याचार के नद में भूला हुआ था। पैशाचिकता की शराब पीकर मेरी चेतना मूर्च्छित सी पड़ी थी। हाय, मैं उसे न पहचान सका, उसके आलोक की गरिमा को न समझ सका। किन्तु कृष्णजी, आज तुम मेरे लिये प्रकाश बनकर आये-और आये जागृति के दूत की भाँति ! आज मेरी प्रसन्नता आकाश की भाँति निःसीम है ! लो कृष्णजी, लो !! इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य में तुम भी जनता-जनार्दन के राजमुकुट और तलवार को लो। इसे उनके चरणों पर चढ़ाकर एक बार फिर कटु शब्दों में मेरी भर्त्सना कर देना !

[जगमल राजमुकुट और तलवार देता है।]

चन्दावत—धन्य हो, ज्ञान-देवता तुम धन्य हो ! तुम्हारी मुरलिया जब बजती है, तब प्रकाश में इतनी शक्ति कहाँ, जो वह मानव–हृदय पर विमुग्ध न हो सके ! वह स्वर-लहरी सुनते ही दौड़कर आता है, और मनुष्य को कर्त्तव्य के झूले पर झुलाने लगता है ! उस समय मानव-हृदय

जो राग गाता है, वह ईश्वरी संगीत से कुछ कम महत्त्व-पूर्ण नहीं होता। आज उन्हीं ज्ञान-देवता की प्रेरणा से मेवाड़ का जो मंगल हुआ है, उसे हम क्या, संसार का कोई भी मनुष्य कभी स्वप्न में भी न भूल सकेगा !!

(पट-परिवर्त्तन)

छठा दृश्य

स्थान—उदयपुर, प्रताप का भवन

समय—दिन का प्रथम प्रहर

[प्रताप चिन्ता और विचारों की गंभीर अवस्था में बैठे हैं।]

प्रताप (स्वगत)—प्यारा मेवाड़ ! कभी गौरव, जातीयता और स्वाधीनता की ज्योति से जगमगा रहा था। किन्तु आज उस पर दासता की कालिमा बरस रही है। उसकी कीर्ति-पवित्रता, जिसकी मेवाड़ के पूर्वजों ने अपने रक्त की भेंट देकर रक्षा की थी, आज दासता की भावना से कलंकित हो रही है। चित्तौर की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं जाता ! ऐसा जान पड़ता है, मानों महापतन की विभीषिका उसे अपनी गोद में लेकर बैठी हुई हो !! किन्तु फिर भी मेवाड़ सुप्त है, फिर भी मेवाड़ियों की रगों का रक्त हिम का स्वरूप धारण किये हो ! मेवाड़ के महाराणा जगमल को मेवाड़ के इस सर्वनाश की कुछ चिन्ता ही नहीं ! वे तो ऐसा ज्ञात होता है, मानों मेवाड़ के इस सर्वनाश को मंगल और कल्याण का शुभ दिवस समझते हों ! जब देखो, तब सुराकी मृदंग पर आनन्द की थपकी लगाया ही करते हैं ! मेवाड़ की मही-माता का गिरि-



विकम्पित चीत्कार अभी तक उनके कानों के पद्दों को न हिला सका ! मेवाड़ का भयानक दुर्भाग्य ! न जाने उसे महापतन की किस दिशा की ओर घसीट कर ले जायगा ।

[एक राजपूत सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—अत्याचार की भी सीमा है, उपद्रवों का भी अन्त है ! पाप और अन्याय के गर्हित-काण्डों का काला इतिहास अब इन आँखों से नहीं देखा जाता ! इच्छा होती है इन आँखों ही को फोड़ लूँ, सदा के लिये उन्हें ज्योति-विहीन बनालूँ !

प्रताप—क्यों, बात क्या हुई सैनिक ! इतने आवेश में क्यों हो ? क्या राज-सत्ता के अत्याचार ने आज अपना पग और आगे बढ़ाया है !

सैनिक—राज-सत्ता का अत्याचार ! ग्रीष्म की प्रचण्ड अग्नि की भाँति प्रति-क्षण तो धधकता रहता है ! दिन-रात का एक भी क्षण तो प्रजा के आहुति दान से खाली नहीं जाता ! करुणा भिखारिनी की भाँति रोदन और चीत्कार करती ही रहती है, किन्तु अत्याचारियों के रक्त-प्रिय पंजे उसे आहत बनाकरके ही सन्तोष की साँस लेते हैं। समस्त मेवाड़ आज सूखे वृक्ष की भाँति जर्जर होकर काँप उठा है। उसका गम्भीर-संगीत, उसके संगीत की मार्मिक भावना ! आह, उसे कौन समझ सकता है ? क्या किसी में प्राण और हृदय शेष है ?

प्रताप—तुम सच कहरहे हो सैनिक ! आज मेवाड़ की संपूर्ण पृथ्वी में प्राण और हृदय कहीं अनुसन्धान करने पर भी न मिलेगा ! इसी लिये तो मेवाड़ में सुषुप्ति का रव बाज रहा है, कठोरता के अधिकार का संगीत हो रहा है ! वन, पर्वत, मेदिनी, सभी जड़ होने पर भी सज्जनों की भाँति आज मेवाड़ की सुषुप्ति पर आँसू बहा रहे हैं ! मेवाड़ियों की ऐसी घोर निद्रा, इसने तो उसके जीवन-इतिहास में कभी नहीं देखी !

सैनिक—मेवाड़ के अधिवासी क्यों न घोर निद्रा में सोयें कुमार ! जागृति की अभिलाषा होने पर भी राज-महल से निसृत मदिरा-गन्ध

मिश्रित वायु-लहरियाँ उन्हें जो ज़बर्दस्ती सुषुप्ति की गोद में ला पटकती हैं 'जैसा राजा, वैसी प्रजा' की लोकोक्ति संसार में चरितार्थ ही है। राजमहल अत्याचार की आग जलाकर आनन्द के गीत गाता है, तो प्रजा मूर्च्छितावस्था में दासता की नींद भी न सोये ! वह राजसत्ता ही कौन, जो अपनी कामना के तरु-सिंचन के पश्चात् प्रजा के हृदय में जागृति का एक बूँद भी रक्त शेष रहने दे !

प्रताप—मेवाड़ के महाराणा और प्रजा में ऐसा घोरतर संघर्ष ! वास्तव में यह मेवाड़ के पवित्र इतिहास में एक काला कलंक है ! मेवाड़ के पूर्वजों ने कभी इस काले कलंक का स्वप्न भी न देखा होगा !

सैनिक—मेवाड़ के महाराणा ! कौन ? महाराज जगमल ! नहीं कुमार, आप भूल रहे हैं ! उनके मस्तक पर मेवाड़ का राज-मुकुट अवश्य है, किन्तु मेवाड़ की प्रजा के हृदय में उनके लिए रंचमात्र भी स्थान नहीं ! हो ही कैसे सकता है ? उन्होंने मेवाड़ की स्वाधीनता को, जो मेवाड़ के आँगन में खेलती थी, मूर्च्छित की गोद में सुला दी है। उन्होंने मेवाड़ की जातीयता को अपने कलुषित कृत्यों के नीचे ढँकने का अनुचित प्रयास किया है। मेवाड़ की प्रजा इसे नहीं सह सकती, मेवाड़ के पूर्वज इसे अपनी आँखों से नहीं देख सकते !!

प्रताप—प्रजा का मानवी अधिकार ! उसकी सच्ची स्वाधीनता है। वह अपना सर्वस्व खोकर अपने स्वाधीनता-वैभव की रक्षा चाहती है। वह अपने इस महान् और अमूल्य वैभव की रक्षा में अपने प्राणों को भी टुकड़े-टुकड़े के रूप में उसकी भेंट चढ़ा देती है। वह अपनी भेंटों से अपनी स्वाधीनता को जगाती है, उसका कीर्ति-संगीत गाती है, और प्रसन्नता से उत्सव के साज सजाती है। किन्तु शोक ! आज मेवाड़ की प्रजा अपने मानवी अधिकारों के साथ ही साथ अपनी स्वाधीनता के इतिहास को भूल बैठी है ? क्या उसकी विस्मृति की अंधकारमयी-रजनी का कभी अन्त हो सकेगा !!



सैनिक—हाँ, हो सकेगा ! उस समय जब मेवाड़ में सत्य, सत्य होकर रहेगा ! मेवाड़ के जीवन का सत्य ! उसकी धर्मभीरुता, उसकी पौरुष वीरता और है उसकी तेज शीलता ! आज मेवाड़ के जीवन का 'सत्य' असत्य हो रहा है। आज मेवाड़ का महाराणा मदिरा की गोद में बैठ कर कायरता की सुमधुर लोरियाँ गारहा है, विलास के साथ अठखेलियाँ करके दासता को अपने गले लगा रहा है। मेवाड़ के लिये यह असत्य है, मेवाड़ी प्रजा के लिये यह कल्पित है। वह अपने चिर-सत्य को फिर स्थापित करेगी, और स्थापित करके अपने प्राणों के टुकड़े चढ़ा कर वह जागृति की सन्तान, बहुत दिनों तक अब सुषुप्ति की गोद में नहीं रह सकती !!

प्रताप—प्रजा का वह जागरण-दिवस ! कितना मंगल-मय होगा सैनिक ! मेवाड़ की मही-माता चिर दिनों से उसकी प्रतीक्षा कर रही है। आह ! क्या मेरी ये अभागिन आँखें भी उस दिवस को देख सकेंगी !

[नैपथ्य में तुमुलनाद, महाराणा प्रताप की जय,
मेवाड़ के सूर्य की जय]

प्रताप—(आश्चर्य चकित होकर)—अभागे प्रताप की जय ! यह किन पागल मनुष्यों का स्वर है सैनिक ! मेवाड़ की मही-माता जब खिन्न हो, तब प्रताप अपने नाम की जयजयकार अपने कानों से नहीं सुनना चाहता ! न जाने क्यों ये मेरी जयजयकार से मेरे हृदय को काँटो से खुरेच रहे हैं।

[नैपथ्य में मेवाड़ अधिपति की जय, मेवाड़ के अभिमान प्रताप की जय।]

प्रताप—फिर वही विजय-नाद, वही जयघोष ! जान पड़ता है, मेरे आहत-हृदय पर नमक छिड़कने के लिये इन पागल मनुष्यों का रव सोच-समझ कर मेरे समीप आता जा रहा है। मैं इसे नहीं सुन सकता सैनिक ! यह मेरे प्राणों में शूल की भाँति पीड़ा उत्पन्न कर रहा है।

जाओ, इन पागलों से कह दो, जय प्रताप की न बोलो, बोलो मेवाड़ की, मेवाड़ की मही–माता की। उसके जयघोष को सुनकर मनुष्य ही नहीं, वन, मेदिनी और पर्वत भी आनन्द से नृत्य कर उठेंगे, मृत्यु भी जीवन बन जायगी, और अंधकार भी प्रकाश हो जायगा।

[सहसा चन्दावत का कुछ राजपूतों के साथ छत्र और तलवार लेकर प्रवेश]

प्रताप—(चन्दावत को देखकर)–कौन चन्दावत कृष्णजी! प्रजा के प्राण, दुखिया मेवाड़ के कीर्ति-ध्वज!! कहिये, आज यह पावन मन्दाकिनी अभागे प्रताप के घर में किस लिये बहाई? क्या इसलिये, कि प्रताप घर बैठे ही प्रायश्चित्त की गंगा में स्नान कर ले, अपने कल्मषों को मल-मल कर धोले!! किन्तु नहीं कृष्णजी, नहीं! प्रताप अभागा है, उसकी पीठ पर दासता का भार लदा है! उसे छोड़ दीजिये। वह पापों की ज्वाला में जले, चिन्ता से घुट–घुटकर साँस तोड़े!! इसी में उसे सुख है, इसी में उसे सन्तोष है!!

चन्दावत—मेवाड़ के सूर्य-प्रताप! आज ऐसी बातें आप अपने मुख से न निकालें! आज बहुत दिनों के पश्चात् मेवाड़ की अंधकारमयी रजनी का अन्त हुआ है, आज तुहिन से ढँके हुए मेवाड़ियों ने सूर्य की सुनहली किरणों का दर्शन किया है, आज उनके प्राणों में फिर जागरूकता का अनहद नाद बज रहा है! आज फिर उन्होंने अपने को पहचाना है, आज फिर उन्होंने स्वाधीनता देवी के आवाहन-मंत्र का जप करना आरंभ किया है!!

प्रताप—सचमुच! चन्दावत कृष्णजी, क्या आप सत्य कह रहे हैं! क्या सचमुच आज मेवाड़ियों के प्रसुप्त प्राण-सागर में ज्वार का कंपन उत्पन्न हुआ है? क्या सचमुच आज उनके तिमिराच्छन्न मानस में दिव्य-रूप धारिणी सुनहली ऊषा ने जन्म लिया है? क्या आज उन्होंने स्वाधी-

नता की स्वर्ण छवि पर विमुग्ध होकर अपने को वार जाने का संकल्प किया है ! तब तो आज का दिन मंगल का दिवस है ।

चन्दावत—हाँ, मेवाड़ के प्राणधारी महाराणा, आज मेवाड़ियों के लिये मंगल का दिवस है । बच्चे किलक कर प्रसन्नता के गान गा रहे हैं, स्त्रियाँ अंचल पसार कर पुण्यों के वरदान एकत्र कर रही हैं । और युवक ? कुछ न पूछो, वे जागृति के मद में झूम-झूम कर त्याग की वीणा पर प्राण विसर्जन के लय का अभ्यास कर रहे हैं ! बाप्पा के मेवाड़ ने आज जैसा प्राणमय मंगल दिवस कभी न देखा होगा महाराणा !! मेवाड़ के वन, पर्वत और मेदिनी के अन्तस्थल से जैसे प्रसन्नता की पिचकारियाँ-सी छूट रही हैं !

प्रताप—मेवाड़ के महाराणा ! आप किसे मेवाड़ के महाराणा के नाम से पुकार रहे हैं कृष्णजी ! अभागे प्रताप को ! नहीं, नहीं, मेवाड़ के महाराणा की स्मृति दिलाकर मुझे पीड़ा और दुःख की शय्या पर न सुलाइये ! वह महान् पद है, उसकी ओर से मेरे तुच्छ प्राणों की भर्त्सना न कीजिये ! मुझे सैनिक कहिये, सैनिक !! मेवाड़ का सैनिक-पद संसार के सम्राट्-पद से कहीं अधिक ऊँचा है, कहीं अधिक गौरव-पूर्ण है !!

चन्दावत—विनम्रता का ऐसा सुन्दर आलोक मेवाड़ के महाराणा के प्राणों में न मिलेगा, तो मिलेगा कहाँ ? मेवाड़ की मही-माता के नयनों के तारे ! अब अपनी महानता से मेवाड़ियों की दुखिया भेंट को अधिक न लजाओ ! उठो, मेवाड़ियों के काँटे के ताज को पहन कर मेवाड़ियों के मंगल-महोत्सव को सार्थक बनाओ ! मेवाड़ की मही-माता तुम्हारे मस्तक पर मेवाड़ का राजमुकुट देखकर मंगल के गीत गायेगी !

[कुमार शक्त का राजपूतों के दल के साथ प्रवेश]

शक्त—मेवाड़ के महाराणा की जय हो ! आज मेवाड़ का भाग जागा है ! आज उसने पुण्य आलोक का दर्शन किया है ! आज उसने प्राणों में प्राण पाये हैं, आज उसने अपना जीवन देखा है !

सभी राजपूत (एक स्वरसे)—मेवाड़ के महाराणा की जय हो ! आज मेवाड़ की आशा मेदिनी में फूल खिले हैं। आज मेवाड़ का प्रभात हुआ है, ऐसा प्रभात, जिसका दर्शन मेवाड़ ने कभी न किया था ?

प्रताप—जनता-जनार्दन का आदेश ! मैं काँटों का ताज पहनूँ, शूल की शय्या पर सोऊँ !! गरल का अमृत-सा पान करूँ, मृत्यु की विभीषिका से हँस-हँस कर खेलूँ !! मेरे प्रजा-प्रभु, तुम्हारा मेरे लिये यह वरदान है। मैं इसे आँखों की पलकों से बटोरता हूँ। किन्तु तुम मुझे मेवाड़ का महाराणा न कहो ! कहो सैनिक, सेवक और सेवा का दूत ! कदाचित् इस पद से मैं तुम्हारी महानता की कुछ रक्षा कर सकूँ !

[महाराणा प्रताप नम्र होकर सिर झुका लेते हैं। चन्दावत राजमुकुट प्रताप के सिर पर रखकर तलवार उनके हाथ में देते हैं और राजपूत एक स्वर से जय का तुमुल नाद करते हैं।]

प्रताप—प्रजा-देवता ! आज तुमने मुझे कर्त्तव्य के सर्वोच्च आसन पर बिठाया है ! मैं तुम्हीं से उसकी गौरव-रक्षा के लिये शक्ति माँगता हूँ, तुम्हारे दिये हुए महान् भारको वहन करने के लिये तुम्हीं से बल की यांचा करता हूँ ! प्रताप ! निर्बल प्रताप !! तुम्हीं उसकी शक्ति हो, तुम्हीं उसकी धमनियों के रक्त हो ! तुम देवता हो, वह पुजारी है। तुम शक्ति हो, वह उपासक है। तुम मंत्र हो, वह साधक है। उत्साह, शक्ति और पौरुष प्रेरणा देना तुम्हारा ही काम है। प्रताप, जिसके मस्तक पर तुमने अपना काँटों का ताज रक्खा है, तुम्हारे सामने अँचल पसार कर तुमसे शक्ति की भीख माँग रहा है। बोलो, क्या कहते हो ? भीख देते हो, या प्रताप को महाराणा बनाकर उसे जगत के अट्टहास का पात्र बनाते हो ?

[राजपूत वेग से तलवार निकालते हैं, और आकाश की ओर उठाकर प्रतिज्ञा करते हैं।]

सभी राजपूत (एक स्वरसे)—हम मेवाड़ के राजपूत, मेवाड़ के

महाराणा प्रताप के संकेत पर अपने प्राणों की बलि चढ़ा देंगे, जननी जन्म-भूमि की रक्षा के लिये बलिदानों का ढेर लगा देंगे !

प्रताप—सचमुच आज पौरुष जाग उठा है, वीरता प्राणों के गीत गा रही है ! प्रजा-प्रभु की दी हुई तलवार, आज तू भी म्यान से बाहर निकल, और प्रताप के हाथों से आकाश की ओर ऊँची उठकर स्वाधीनता की ज्योति चमका दे ! (तलवार म्यान से निकाल कर आकाश की ओर उठाते हैं) आज कर्त्तव्य का दिवस है। सारा मेवाड़ जागृति के समुद्र में जैसे स्नान-सा कर रहा है ! बाल, वृद्ध, तरुण सभी विसर्जन के मद से पागल-से हो रहे हैं। फिर मैं अपने प्राणों के उफान को कैसे रोक सकता हूँ ? मुझे आज जनता-जनार्दन का वरदान प्राप्त हुआ है, आज उन्होंने मुझे शक्ति की भिक्षा दी है ! मुझे आज कितना हर्ष है ! अंग-प्रत्यंग में जैसे प्रसन्नता का सागर-सा उमड़ चला है ! अतः आज मैं भी मेवाड़ के पागल राजपूतों की भाँति प्रसन्नता से शपथ ले रहा हूँ—शपथ ले रहा हूँ ! मेवाड़ के उद्धार की, चित्तौर की मही-माता की कीर्ति—रक्षा की ! आकाश लिख ले, वन, मेदिनी और पर्वत कान खोल कर सुन ले !! जब तक मेवाड़ के दासता-बन्धन को काट न लूँगा; खण्डहरों में निवास करूँगा, शिला-खण्डों पर सोऊँगा और पत्तलों पर भोजन करूँगा !

चन्दावत—मेवाड़ की दुखिया मां ! आज हर्ष से उसका लोम-लोम नाच उठा है ! आज कई वर्षों के पश्चात् उसके आँगन में पुनः जागृति-देवी ने पदार्पण किया है, और पदार्पण किया है महाराणा प्रताप के रूप में। मेवाड़ी वीरों ! मंगल मनाओ, मेवाड़ के गाँव-गाँव में घूम कर हर्षगान गाओ। ऐसा गान गाओ, जिसमें मेवाड़ के महाराणा की प्रतिज्ञा हो, उनके हृदय की अभिलाषा हो, और हो उनके प्राण-ज्योति की दिव्य भावना ! इसमें सन्देह नहीं, कि वह गान सुप्त मेवाड़ को जगा देगा, उसकी नसों में जीवन का शंख फूँक देगा !!

प्रताप—धन्य हो, प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि, तुम धन्य हो !! मेवाड़ की दुखिया मां आज तुम्हारे ही हृदय में कुटी बना कर निवास कर रही है ! तुम्हीं उसकी आँखों की ज्योति हो, तुम्हीं उसकी आशाओं के संवल हो ! तुम्हीं ने आज प्राण-गान गाया है, और तुम्हींने सुप्त मेवाड़ को जगाने के लिये जागृति का शंख फूँका है। तुम्हें, और तुम्हारे भाइयों की शक्ति को पाकर आज मैं भी धन्य हो उठा हूँ। चन्दावत, तुम श्रद्धा और भक्ति के इतने अनन्य पुजारी ! मेवाड़ की जिस रज में लोट-लोट कर तुम बड़े हुए हो; उसके अणुमात्र के मूल्य पर असंख्य हीरे, जवाहिरों और मणियों का मूल्य निछावर किया जा सकता है।

[प्रस्थान]

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुर, दुर्ग-द्वार

समय—प्रभात

[राजपूत सैनिक समर-वेश में सुसज्जित होकर खड़े हैं ।]

चन्दावत—वीरों ! आज मेवाड़ का मंगल दिवस है । बहुत दिनों के पश्चात् आज पुनः मेवाड़ियों के प्राण-समुद्र में जागरूकता का कंपन आया है । तुम्हारे सैनिक वेश में आज पुनः बलिदान की भावना जाग उठी है । तुम्हारी जागृत बलिदान-भावना को देख कर देखो आज सूर्य भी अपनी अलौकिक आभा के साथ हँस रहा है—जगत के ऊपर अपनी प्रसन्नता का स्वर्णिम बुक्का डाल रहा है !

[नैपथ्य में महाराणा प्रताप के जय का तुमुल नाद ।]

चन्दावत—वीरों ! सावधान हो जाओ, तुम्हारे साहस और तुम्हारी शक्ति का निरीक्षण करने के लिये महाराणा आ रहे हैं ! उन्हें इस मंगल-मय दिवस में अपनी ज्योति से हँसाना, और बलिदान के पथ पर दो कदम और आगे बढ़ने के लिये विवश करना !

[सामन्तों के साथ महाराणा प्रताप का प्रवेश । राजपूत सैनिक सिर झुका कर अभिवादन करते हैं ।]

महाराणा प्रताप—(राजपूतों को देखकर)—ओह ! आज इस प्रभात-वेला में उदयपुर के दुर्ग-द्वार पर मैं यह क्या देख रहा हूँ ? जान पड़ता है, स्वाधीनता की महिमा-मयी देवी ने आज अपने हाथों से इन्हें बलिदान की शराब पिला दी हो ! मेवाड़ में इतनी जागरूकता मेवाड़ी वीरों में उत्सर्ग की इतनी अटूट भावना !! मैंने तो कभी इसकी कल्पना तक न की थी, इसका स्वप्न तक न देखा था ! धन्य हो, माँ की गोद के उज्वल चन्द्रमा धन्य हो !! आज तुम्हारे सैनिक-वेश में छिपी हुई बलिदान-ज्योति को देखकर दुखिया माँ का हृदय भी खिलखिला कर हँस उठा होगा ! अच्छा तो गाओ, प्राणों में उत्साह भर कर राजस्थान के गीत गाओ । ऐसा गीत गाओ, कि आकाश-पाताल में भी उससे सिहरन उत्पन्न हो जाय, जड़-पदार्थों के सुप्त-प्राणों में भी उससे एक लहर सी आ जाय !!

[गान होता है और सबके साथ महाराणा भी गाते हैं ।]

जय जय जागृत राजस्थान ;
प्रकृति भक्ति का अर्घ्य सजाती ;
भेंट मेदिनी प्रत्यह लाती ;
चुन-चुन प्रेम-प्रसून चढ़ाती ;
गाती गौरव-गीत महान ;
जय जय जागृत राजस्थान ।

२

दिव्य लोक से रवि-कर-रथ पर ;
स्वतंत्रता आमुदित उतर कर ;
ललित त्याग भावों से भरकर ;
करती तेरा स्वर्ण विहान ;
जय जय जागृत राजस्थान ।

३

शक्ति-द्वार पर शंख बजाती;
त्याग साधना मंत्र जगाती;
पुण्य लुटा कल्याण मनाती;
हो जाती तुझ पर बलिदान;
जय जय जागृत राजस्थान!

[गान बन्द होता है]

प्रताप—मेवाड़ के जागृत सन्तानों! जाओ, मेवाड़ के घर-घर में जागृति का शंख फूँक दो, मेवाड़ियों के प्राण-प्राण में अपनी वीरता का अनहद नाद बजा दो! अहेरिया उत्सव निकट है-वह प्राणों का उत्सव होगा, उत्सर्ग और विसर्जन का पुण्य दिन होगा! उस दिन प्रसुप्त मेवाड़ अँगड़ाइयां लेकर ऐसा उठे, कि उसे देखकर आकाश भी काँप जाय, समुद्र भी थोड़ी देर के लिये स्थिर होकर उसका तेजो-दीप्त मुख-मण्डल देखने लगे।

[मेवाड़ और प्रताप की जयजयकार के साथ प्रस्थान।]

[पट-परिवर्तन]



दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर, गजसिंह का घर

समय—दोपहर

[गजसिंह चिन्तित होकर, मुँह बनाकर बैठा हुआ है ।]

गजसिंह—(स्वगत)—बिलकुल समय ही पलट गया ! सन्ध्या का प्रभात और प्रभात की सन्ध्या बन गई ! न जाने जगत में क्या होने वाला है ! विलास की खेती पर ऐसा कर्कश तुषार तो भगवान रामचन्द्र के समय में भी कभी नहीं पड़ा था ! बेचारी मदिरा मोहिनी तो उदयपुर के राज-महल को छोड़ कर न जाने किस लोक में प्रयाण कर गई। न अब कानों में नूपुरों की झँकार आती है, और न आनन्द के मृदंग का बेसुध राग ! महाराज जगमल भी कितने कायर और भीरु हैं ! चन्दावत की ज़रा सी घुड़की ही से डर गये, और चुप-चाप अपना राज-मुकुट उतार कर चन्दावत को दे डाला !

[प्रेमसिंह का प्रवेश]

प्रेमसिंह—अरे ! आज तो तुम अधिक चिन्तित दिखाई देरहे हो ! आज तुम्हारे अधरों पर न वह चिर-परिचित हास्य है, और न आकृति पर पुरानी जगमगाहट ! जान पड़ता है, आज हृदय पर किसी तेज़ तीर का आघात लगा है !

गजसिंह—हाँ भाई, तेज़ तीर का आघात ही लगा है ! अब इससे तेज़ तीर भला दूसरा कौन होगा ! देखो न, अब न पीने को मदिरा मिलती है, और न खेलने को विलास ! दिन-रात घर के द्वार पर मुँह लटका कर बैठे रहो ! ताश, चौपड़ और सतरंज खेलने की तो बिलकुल

मनाही कर दी गई है। महाराज जगमल ! उनके समय में तो आनन्द का जैसे सावन लगा रहता था—मदिरा और विलास की जैसे बहार-सी डोलती रहती थी !

प्रेमसिंह—सचमुच जी, अब उदयपुर में अन्धेर का राज्य हो गया है। न कहीं मधुरता, न कहीं सरसता, न कहीं हँसी और न कहीं विनोद ! विनोद और हँसी की तितलियाँ भी अब तलवार की धार साफ करने लगी हैं। मैं तो उदयपुर में चारों ओर तलवार, भाला और बर्छी की झँकार को सुनकर जैसे आकुल-सा हो उठा हूँ। इच्छा होती है, किसी ऐसे स्थान में जा बसूँ, जहाँ इन पागल उदयपुरियों के दर्शन तक न हो सकें।

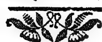
गजसिंह—तुम भी महाराज जगमल की भाँति कायर हो, भीरु हो ! अरे, उदयपुर को छोड़कर दूसरे स्थान में क्यों जाओगे ? आओ, हम तुम भी प्रयत्न करें, महाराज जगमल को पुनः मेवाड़ के राज-सिंहासन पर बैठाने का प्रयास करें !

प्रेमसिंह—किन्तु भाई, इस प्रयास में चन्दावत कौन बनेगा ? मुझे तो जानते हो, चन्दावत बनने को कौन कहे, मैं उसका नाम तक लेना महा-पाप समझता हूँ। सच पूछो, तो उसीने हम लोगों के विलास और सुख के संसार में आग लगाई है !

गजसिंह—यह क्यों नहीं कहते, कि प्रताप के सिर से राज-मुकुट उतारने के लिये मुझ में चन्दावत का सा साहस नहीं ? ठीक ही है, सिंह के सामने लोमड़ी कैसे जा सकती है ?

प्रेमसिंह—अच्छा मैं लोमड़ी ही सही ! लोमड़ी बनने में भी यदि अमूल्य प्राणों की आजकल रक्षा हो जाय तो मैं लोमड़ी बनने में तनिक भी संकोच न करूँगा !

[नैपथ्य में ढिंढोरे का शब्द]




गजसिंह—अरे, यह असमय की सहनाई कैसी ? भला उदयपुर की विलास-नगरी में इस ढिंढोरे की क्या आवश्यकता ? जान पड़ता है, दाल में कुछ काला है, प्राणों पर कुछ बीतने वाली है।

प्रेमसिंह—बस ! ढ़िंढ़ोरे का शब्द ही सुन कर डर गये! अरे फिर चन्दावत बन कर प्रताप के सिर से राज-मुकुट उतारने के लिये कैसे जाओगे? बेचारे महाराज जगमल ! तुम्हारे ही ऐसे वन-पतियों ने उन्हें चंग पर चढ़ाकर आकाश के सर्वोच्च आसन पर बैठाया था।

[नैपथ्य में फिर ढ़िढ़ोंरे का शब्द]

(नैपथ्य से)—मेवाड़ के महाराणा का आदेश है ! कल अहेरिया उत्सव में प्रत्येक राजपूत को भाग लेना पड़ेगा। अपने-अपने बर्छे के आघात से एक-एक वन-पशु का शिकार करना पड़ेगा !!

गजसिंह—विपत्ति में आटा गीला ! मदिरा और विलास के वियोग में प्राण सूखे ही जा रहे थे, कि अब वन में वीरता का प्रदर्शन करना पड़ेगा ! भला कौन ऐसा अज्ञान है, जो जान-बूझकर अपनी जान जोखों में डालेगा ! मुझसे तो यह न हो सकेगा ! न मैं अहेरिया उत्सव में जाऊँगा, और न किसी वन-पशु का शिकार करूँगा !

प्रेमसिंह—वन-पशुका शिकार करने से इतना डरते हो ! फिर महाराज जगमल को राज-सिंहासन पर कैसे बिठा रहे थे ! प्रताप, महाराज जगमल तो हैं नहीं, कि तुम्हारी घुड़कियों से भय-भीत होकर अपना राज-मुकुट उतार कर तुम्हें दे देते ! उसके लिये तो तुम्हें तलवार से तलवार बजानी होती, चंडी-माता के खप्पर में रक्त की भेंट देनी होती !

गजसिंह—तू मूर्ख है ! तू इतना भी नहीं जानता, कि मैं महाराज जगमल को मेवाड़ के राज-सिंहासन पर कैसे बैठाता ! किन्तु शोक ! ढ़िंढ़ोरे वालेने मेरी समस्त आशा-लता पर तुषार डाल दिया।

प्रेमसिंह—मैं भी तो सुनूँ ! आखिर तुम महाराज जगमल को मेवाड़ के राजसिंहासन पर कैसे बिठाते ।

गजसिंह—मैं तुम्हें महाराणा प्रताप बनाता । तुम्हारे सिर पर पत्तों का राजमुकुट रखता, और फिर चन्दावत बनकर तुम्हारे दरबार में जाता ! बोलो, फिर तुम क्या मेरी घुड़कियों से भयभीत होकर अपना राजमुकुट मुझे न दे देते ? किन्तु अब इस बातों से लाभ क्या ? अब न मैं चन्दावत बन सकूँगा, और न महाराज जगमल मेवाड़ के राणा ! अब तो अपने-अपने प्राणों के लाले पड़े हैं । चलो उदयपुर से भाग कर किसी भाँति अपने-अपने प्राणों की रक्षा करें ! 'प्राण बचे लाखों पाये' का गुरुमंत्र ही इस समय हम लोगों के जीवन का प्रमुख ध्येय होना चाहिये !

प्रेमसिंह—तो क्या सचमुच उदयपुर छोड़ दोगे ? आह, महाराज जगमल का विलास-भवन, विलास-भवन में सिसकती हुई शराब की प्यालियाँ !! क्या सर्वदा सब एक साथ ही आँखों से ओझल हो जायँगी ! न भाई, ऐसा वज्रपात न करो !

गजसिंह—तू पागल है, अज्ञान है ! देखता नहीं, चारों ओर महामारी की ज्वाला-सी छिटकी हुई है । चाहे जो जिस समय इस भयंकर ज्वाला में भून उठे ! चलो, जल्दी चलो ! इस दोपहरी में किसी भाँति प्राण बचा कर उदयपुर की सीमा से बाहर भाग चलें ।

[दोनों सिर पर एक-एक पोटली रख कर भागना चाहते हैं । सहसा दूसरी ओर से कन्धे पर एक शूकर का शव लादे तथा गाते हुये वीर कुमार का प्रवेश ।]

* गान *

वीर कुमार—तू जननी तू जन्मभूमि है,
तू गौरव, अभिमान ।
तू जीवन तू शक्ति-राशि है,
तू गरिमा गुण-खान ।
पुण्यमयी तू कीर्तिलता है,
तू पौरुष सम्मान ।
तू जागृति तू प्राण राग है,
तू सुन्दर बलिदान ।

[दोनों को भागते हुये देखते हैं ।]

अरे ! तुम दोनों कहाँ भागे जा रहे हो ? कल अहेरिया उत्सव का दिवस है । समस्त मेवाड़ के प्राणों में ज्वार-सा उत्पन्न हो उठा है । चारों ओर से वीर राजपूतों का समुद्र-सा उमड़ा चला आ रहा है । एक-एक से शूर-वीर आयेंगे, और अपनी वीरता के अद्भुत कौतुक दिखायेंगे ! मेवाड़ के ऐसे मंगल के दिन, तुम दोनों उदयपुर को छोड़ कर कहाँ भागे जा रहे हो !

गजसिंह—इसीलिये, कि कल अहेरिया उत्सव का दिवस है । महाराणा ने अपना यह आदेश प्रचारित किया है, कि प्रत्येक राजपूत को उसमें सम्मिलित होना पड़ेगा । इतनाही नहीं, और अपने बर्छे के आघात से एक-एक वन-पशु का शिकार भी करना पड़ेगा !

प्रेमसिंह—हम लोग उदयपुर को छोड़ कर जायँ न तो क्या करें ? प्राण कुछ मार्ग में पड़ा हुआ तो मिला नहीं है ! जो महाराणा प्रताप की आज्ञा से वन-पशुओं के सामने उसे बेमोह फेंका करें ! न भाई, हम लोगों से यह काम तो न हो सकेगा !

वीर कुमार (हँसकर)—अच्छा तो तुम दोनों उदयपुर को छोड़ कर इस लिये भागे जा रहे हो, कि अहेरिया उत्सव के दिन तुम दोनों को भी एक-एक वन-पशु का शिकार करना पड़ेगा ! किन्तु नहीं, तुम दोनों कहीं न जाओ ! चले जाओगे तो महाराज जगमल के दिन कैसे कटेंगे ! लो, यह सूकर का शव ! अहेरिया उत्सव के दिन इसीसे अपनी राजपूती की आन स्थापित करना, और मेवाड़ की मही-माता के जय के गीत गाना !

[वीर कुमार का शव फेंक कर प्रस्थान]

गजसिंह—वाह ! आखिर चन्दावत का पुत्र है न ! कितना उदार, कितना त्यागी, और कितना तेजशील !! वीरता और पौरुष की प्रतिमा-सी ज्ञात हो रहा है ।

प्रेमसिंह—पिता ने महाराणा प्रताप को मेवाड़ का राजसिंहासन दिलाया, और पुत्र ने हम दोनों के प्राणों की रक्षा की । चलो दोनों ही पूज्य हैं, दोनों ही माला की भाँति जपने के योग्य हैं !

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्त्तन]



तीसरा दृश्य

स्थान—वनभूमि

समय—प्रभात

[अहेरिया उत्सव का दिवस । महाराणा प्रताप और उनके छोटे भाई शक्त । दोनों एक वन-शूकर के पीछे अपना घोड़ा दौड़ाते हैं, और साथ ही बाण मारते हैं । शूकर आहत होकर भूमि पर गिर पड़ता है ।]

शक्त (शूकर के पास पहुँच कर)—बेचारा शक्ति के मद में उछलता हुआ पवन की गति के समान आगे-आगे जा रहा था । कदाचित् उसे यह ज्ञात न था, कि राजपूतों के बाणों में गमन की पवन से भी अधिक शक्ति हुआ करती है ।

[शक्त के अनुचर का प्रवेश]

अनुचर—कुमार शक्त के अतुल-पराक्रम की जय हो ! आज कुमार ने अहेरिया उत्सव के दिन इस शक्ति की भयानक प्रतिमा को आहत बनाकर अधिक यश अर्जन किया है !

शक्त—बेचारा वन-शूकर प्राणों की सम्पत्ति लेकर भागा जा रहा था । किन्तु मेरे कठोर बाणों ने उसे कंगाल बना ही डाला ।

अनुचर—नहीं कुमार, यों कहिये ! शक्ति के मद में अन्धे वन-शूकर को आपके बाणों ने क्षण-मात्र में भूमि पर सुला दिया । देखिये कुमार ! इसी से मरने पर भी उसकी आँखें आपसे अपने अपराधों की क्षमा मांग रही हैं ।

शक्त—अनुचर, तुम बात बनाने में बड़े निपुण हो । अच्छा शूकर के इस शव को उठाकर चण्डी माता के मन्दिर के निकट ले चलो !

[अनुचर शव उठाता है । महाराणा प्रताप का प्रवेश]

प्रताप—अनुचर, इस शूकर के शव को कहाँ लिये जा रहा है। इसे मैंने अपने बाणों से मारा है।

[अनुचर शव छोड़कर दूर हट जाता है]

शक्त—नहीं भैया, इसे मैंने अपने बाणों से मारा है!

प्रताप—शक्त! तुम्हें दूसरे की शक्ति, साहस और पौरुष को अपना बताते हुए लज्जा नहीं आती!

शक्त—नहीं भैया, यह शक्त के जीवन-मर्यादा के विरुद्ध है। शक्त कभी दूसरे की शक्ति, साहस और पौरुष को अपना नहीं बता सकता!

प्रताप—तुम्हारा यह दुस्साहस है शक्त! तू निर्लज्जता का घूँट पीकर अपने ही मुख से अपने साहस के गीत गा रहा है!

शक्त—साहस के गीत गा रहा हूँ, किन्तु असत्य नहीं महाराज! अपने साहस, शक्ति और पौरुष को अपना बताने में संकोच कैसा? जब मैंने इस शूकर को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया है, तब मैं यह कहूँगा ही, कि यह मेरा पौरुष है, मेरी शक्ति है, और मेरा साहस है!

प्रताप—तुम्हारा साहस सीमा का उल्लंघन करता जा रहा है शक्त! इसका परिणाम बहुत बुरा होगा।

शक्त—और आप महाराज! आप तो बहुत पहले ही सीमा का उल्लंघन कर चुके। उसी समय; जब आपने अपने लघु-भ्रात शक्त के पौरुष को अपना पौरुष और उसकी शक्ति को अपनी शक्ति घोषित की!

प्रताप—निर्लज्ज शक्त, शक्ति का इतना उपहास, पौरुष की इतनी भर्त्सना! और फिर मेवाड़ के महाराणा प्रताप के सम्मुख! सावधान होकर मुख खोल! नहीं तो दण्ड का वज्र आज तेरे सिर पर गिर कर रहेगा!

शक्त—बहुत हो चुका महाराज, बहुत हो चुका!! न्याय और सत्य के रव-हीन ढिंढोरे को अब न पीटिए। मेवाड़ का सम्राट् होने के कारण दण्ड का वज्र आपके हाथों में है। चाहे उसे जिस निरपराध के

सिर पर गिराइए। किन्तु शक्त उससे भय-भीत होकर अपने पौरुष और अपनी शक्ति की सम्पत्ति को कदापि नहीं छोड़ सकता!

प्रताप—कायर शक्त! जान पड़ता है, आज तू मृत्यु का आवाहन करने के लिये आकुल हो उठा है। इसीलिये तो सिंह से इतनी छेड़-छाड़! सावधान! शूकर के शव से अलग दूर हट जा! नहीं तो आज संसार को इस वन-शूकर के शव पर एक दूसरा ही शव दिखाई पड़ेगा।

शक्त—धमकियों से वे भय-भीत होते हैं महाराज! जो निर्बल होते हैं, जिनकी रगों में रक्त का अभाव होता है। शक्त धमकियों से डरनेवाला नहीं। आखिर वह भी तो मेवाड़ की रज में लोट-लोट कर बड़ा हुआ है, उसकी भी रगों में तो सिसौदिया-वंश का रक्त लहरा रहा है!

प्रताप—अभिमानी शक्त! आज मैं तेरे दर्प को धूल में मिलाकर छोड़ूँगा!

शक्त—और आज मैं मेवाड़ के महाराणा को यह बता दूँगा, कि शासन-शक्ति से वंचित निःसहाय मनुष्य भी अपने गौरव को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते हैं।

प्रताप—विद्रोही शक्त, सावधान! तुम्हारे दर्प का अन्त करने के लिए मेरी तलवार अब म्यान से निकलना ही चाहती है।

शक्त—उसका स्वागत करने के लिए मेरी तलवार भी म्यान में अधिक समुत्सुक हो रही है।

[दोनों तलवार निकाल कर एक दूसरे पर आघात करते हैं]

प्रताप—देखले शक्त, एक बार, भली-भाँति संसार को देखले। अब कदाचित तुम्हें फिर संसार को देखने का अवसर न मिलेगा! कायर! आज मैं तेरे धृष्ट-जीवन का अन्त करके छोड़ूँगा।

शक्त—आकुल क्यों होते हैं महाराणा? अभी थोड़ी ही देर में समस्त संसार को यह विदित हो जायगा, कि कौन कायर था? शक्त, या महाराणा प्रताप! [पुरोहित का प्रवेश।]



पुरोहित (स्वगत)—आश्चर्य ! मेवाड़ के इस अहेरिया उत्सव के दिन मेवाड़ के राजवंश ही में विद्रोह ! दोनों भाई, इस भाँति एक दूसरे पर आघात कर रहे हैं, मानों कई सदियों से इनकी शत्रुता चली आ रही हो ! दोनों एक दूसरे के रक्त के प्यासे, एक दूसरे के प्राणोंके ग्राहक !! न जाने बेचारे मेवाड़ को कौन से दिन देखने हैं। किन्तु नहीं, मैं अपनी आँखों के सामने मेवाड़ के राजवंश का सर्वनाश न होने दूँगा। मेवाड़ के राजवंश का नमक मेरे प्राणों में भिना है। मैं उसका मोल चुकाऊँगा, दोनों भाइयों को समझा कर धधकती हुई विद्रोह की अग्नि को शान्त करूँगा।

[दौड़ कर उन दोनों के समीप जाता है।]

पुरोहित—महाराणा, यह क्या हो रहा है ? मेवाड़ के सर्वनाश का आयोजन, उसे कंगाल बनाने का प्रयत्न ! मेवाड़ आज तलवारों की इन झँकारों को सुनकर लज्जित हो रहा है, अपमान से पाताल–लोक में धँसा जा रहा है। उसके गौरव, उसके प्रताप और उसके तेज का इतिहास जैसे मलिन-सा होता जारहा है। बन्द कीजिये महाराणा, अपनी चलती हुई तलवार को बन्द कीजिये। देखिये, आप दोनों भाइयों के इस कृत्य को देखकर सूर्य भी बादलों की ओट में छिपा जारहा है। न बन्द कीजियेगा तलवार महाराणा ! अच्छा शक्त, तुम्हीं मान जाओ। तुम्हीं इस धधकती हुई विद्रोह की अग्नि में ठंडे जल के छींटे मारो। शक्त, महाराणा तुम्हारे बड़े भाई हैं, मेवाड़ के अधिपति हैं। उनपर तलवार चला कर मेवाड़ की मही–माता का निरादर न करो, अपमान और भर्त्सना के तीव्र काटों से उसके हृदय को न खुरचो ! क्या तुम मेवाड़ को श्रीहीन ही कर देना चाहते हो शक्त ! नहीं, उसके वैभव को न उजाड़ो, उसके गौरव को धूल में न मिलाओ !

[दोनों अधिक वेग से तलवार चलाते हैं।]

पुरोहित (स्वगत)—मेरी बातों का इन पर तो कोई प्रभाव ही नहीं पड़ रहा है। मेरी बातें मानों इनके सम्मुख पर्वत के कर्कश झँकारों में तूल के समान हो रही हैं। प्रतिहिंसा की ज्वाला क्षण पर क्षण भयंकर ही होती जा रही है। घात-प्रतिघात के कौशल, एक दूसरे को मिटाने की कलाबाजियाँ, अपनी पटुता को तीव्र ही करती जा रही हैं। तो क्या आज मेवाड़ लुट जायगा ? तो क्या आज उसके गौरव-वसन्त की श्री उससे विलग हो जायगी ? नहीं, मैं उसे न लुटने दूँगा, उसकी कीर्त्ति-वैभव को सर्वनाश की धूलि में न मिलने दूँगा !

[कुछ और समीप जाता है।]

पुरोहित—न बन्द कीजियेगा तलवार महाराणा ! क्या मेवाड़ के सर्वनाश ही पर तुले हैं ? क्या मेवाड़ को सचमुच श्मशान की भाँति भयानक बना देना चाहते हैं ? शक्त ! तुम भी न मानोगे ! मेवाड़ के महाराणा का अपमान ! आज तुम मेवाड़ की मही-माता का अपमान कर रहे हो, उसकी कीर्त्ति के आभूषणों को उसके शरीर से उतार कर दूर फेंकने का प्रयत्न कर रहे हो ! अच्छा न मानो, दोनों हिंसा के अवतार बने हुए अपनी तलवार ही से अपने शरीर की बोटियों को अलग करो—
[कुछ सोचता है।]

[अपनी छाती में छूरा मार लेता है, दोनों भाइयों की चलती हुई तलवार बन्द हो जाती है।]

प्रताप (आश्चर्य से)—अरे ब्रह्महत्या ! बेचारा जब पुकार लगाते-लगाते थक गया, तब अपनी ही छाती में छूरा मार लिया। इसका यह आत्मोत्सर्ग ! कितना उज्वल है, कितना पवित्र है। किन्तु उज्वल और पवित्र होते हुए भी इस ब्रह्महत्या ने मेरे प्राणों में आकुलता की एक आग-सी लगा दी ! पुरोहित, तुम धन्य हो ? तुमने मेवाड़ राज-वंश के दो भाइयों की प्रज्वलित विद्रोहाग्नि को शान्त करने के लिये अपने रक्तों की



वर्षा की। किन्तु पुरोहित, साथ ही तुमने मेरे जीवन में एक ऐसा कलंक लगा दिया, कि मैं कदाचित् उससे कभी मुक्ति न पा सकूँगा।

पुरोहित—शोक और चिन्ता अब व्यर्थ है महाराणा। कौन कहता है, आपके सिर पर ब्रह्महत्या का अभिशाप लदा! कर्तव्य और बलिदान की प्रभा के सामने अन्धकार को स्थान ही कहाँ? मेरी सदा के लिये बन्द होती हुई आँखें यह देख कर अतीव प्रसन्न हो रही हैं, कि विद्रोह की अग्नि शान्त हो गई, और विद्रोही शान्त चित्त से अपनी भूलों पर विचार कर रहे हैं। बस, महाराणा बस!! प्रस्थान की घड़ी सन्निकट है। आदेश दीजिये, किन्तु मेरे इस प्रस्थान दिवस को कभी न भूलियेगा, और तुम भी शक्त! [आंख बन्द कर लेता है]

प्रताप—शक्त! यह ब्रह्महत्या केवल तुम्हारे कारण हुई है। तुम अपराधी हो।

शक्त—मैं अपराधी हूँ महाराणा, केवल इसी लिये, कि शासन-शक्ति आपकी सहचरी और दण्ड का वज्र आपका सहायक है!

प्रताप—कुछ भी हो शक्त! तुम अपराधी हो। और हो ऐसे अपराधी, जिसके प्रति क्षमा भी अपने हृदय को वज्र-सा कठोर बना लेती है। मैं तुम्हारे इस अपराध को कदापि नहीं भूल सकता शक्त!

शक्त—जो दण्ड दीजिये महाराणा! शासन-शक्ति आपके हाथ में है।

प्रताप—तो सुनो मेरी दण्डाज्ञा शक्त! इसी समय मेवाड़ को त्याग कर उसकी राज्य-सीमा से बाहर निकल जाओ। मेवाड़ ऐसे अपराधियों को कदापि अपनी छाया में स्थान नहीं दे सकता!

शक्त—मुझे स्वीकार है। मैं मेवाड़ छोड़ कर जा रहा हूँ; अपनी मातृ-भूमि को त्याग कर सदा के लिये उससे विलग हो रहा हूँ। किन्तु इस अन्याय और असत्य का आपको भी प्रति-फल भोगना पड़ेगा महाराणा!

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

——*——

चौथा दृश्य

स्थान—निर्जन वन की वृक्ष-छाया

समय—मध्याह्न वेला

[ग्रीष्म के प्रचण्ड उत्ताप से श्रान्त शक्त]

शक्त (स्वगत)—ओह ! बड़ी तीव्र गर्मी है। लू इस भाँति प्रचण्ड होकर चल रही है, मानों अग्नि की पिचकारियाँ लेकर संसार से होली खेल रही हो। ग्रीष्म के प्रचण्ड प्रकोप को देख कर प्रकृति जैसे कम्पित-सी हो उठी है। पेड़, पौधे, वृक्ष और लतायें अपने प्रकृत संचालन को बन्द कर ग्रीष्म के इस महा-प्रकोप के अन्त के लिये ईश्वर से मूक-प्रार्थना कर रही हैं। पक्षी व्याकुल हैं प्यास से। वन-पशु वृक्षों की छाया में पड़े हैं—ग्रीष्म के उत्ताप से व्याकुल होकर जीभ निकाले हांफ रहे हैं। पृथ्वी मानों ज्वाला-मय हो रही है। पैर रक्खे तो ऐसा ज्ञात होता है, मानों भूल से धधकते हुए अङ्गारे पर पड़ गये हों। ओह ! अब नहीं चला जाता, एक पग भी आगे नहीं बढ़ा जाता ! दिन के इस मध्याह्न वेला में ही आँखों के सामने रह-रह कर अंधकार की छाया दौड़ पड़ती है !

[एक वृक्ष की छाया में बैठ जाता है।]

शक्त—प्यास ! किन्तु इस मरु-भूमि में पानी कहाँ मिले ? पानी का तो यहाँ अकाल सा पड़ा हुआ है। पक्षी, वन-पशु, जिसी को देखो, वही प्राणों में भयंकर प्यास छिपाये हुये आकुल होकर इधर-से-उधर परिभ्रमण कर रहा है। किन्तु प्यास हलचल मचा रही है, प्राणों के भीतर जैसे एक कचोट-सी उठ रही है। तो क्या आज की तृषा प्राणों को समाप्त कर देगी ? आह भगवान् ! मेवाड़ के राज-वंश का कुमार शक्त आज

एक बूँद जल के लिये तरस रहा है। तुम्हारी सृष्टि का बड़ा ही अद्भुत रहस्य है!

[तृषा से व्याकुल एक मृग-झुण्ड का प्रवेश।]

शक्त—ये मृग भी प्यास से छटपटा रहे हैं! मेरी ही भाँति इनके प्राणों में भी भयंकर कंचोटें उठ रही हैं, मेरी ही भाँति इनका अन्तरतम भी ज्वाला से भस्मी-भूत हो रहा है। तभी तो ये जीभ निकाल कर ओठों को चाट रहे हैं! ग्रीष्म की भयंकर ज्वाला ने बेचारों की साँसों तक को कँपा दिया है। किन्तु ये इस आकुलता में भी दौड़े कहाँ जा रहे हैं—क्या शीतल-छाया और जल की खोज में! नहीं, जान पड़ता है, इन्हें जल के स्थान का पता है! इसी से ये प्राण छोड़कर उसी ओर भागे जारहे हैं। आशा ने इनके प्राणों में ऐसी स्फूर्ति डालदी है, कि ज्वाला-मय मेदिनी का इन पर कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ रहा है। तो क्या मैं भी इन्हींके साथ चलूँ! कदाचित् भगवान् ने मेरी तृषा को शान्त करने के लिए ही इन्हें तृषित बना दिया हो!

[उठकर चलता है। कुछ दूर पर जल का एक सरोवर दिखाई देता है।]

शक्त—वन-पशु भी कितने उपकारी होते हैं। सचेतन मनुष्यों के उपकार की इतनी भावना कहाँ? उपकार की वास्तविक भावना तो मूक-पशुओं में होती है, और होती है वन में रहने वाले खगों में। देखो न, इन मृगों को! तृषा से व्याकुल थे, किन्तु मेरे प्राणों की रक्षा के लिये मुझे भी सरोवर के तट पर खींच लाये। इसे कहते हैं, उपकार की प्रकृत भावना! इस भावना का दर्शन मानव-जगत में कहाँ हो सकता है।

[सरोवर में पानी पीते हैं।]

शक्त—कितना शीतल जल है, वनके पक्षी और पशु इसी जल से अपनी तृषा शान्त करते हैं। वन के मध्य में जल का यह सरोवर क्या है, जीवन का भण्डार! आज अपने इसी भण्डार से वन पशुओं ने मुझे

जीवन-प्रदान किया है, मेरे प्राणों में सावन की हरियाली उत्पन्न की है। उनकी यह उपकार-भावना और उनका यह आतिथ्य !! हृदय में दैवत्त्व की सृष्टि उत्पन्न करता है। [पानी पीकर एक वृक्ष की छाया में बैठते हैं।]

शक्त—जाते हुए प्राण लौट आए, टूटती हुई साँसें जुट गईं ! प्राणों ने जैसे फिर नवीन शक्ति पाई है, मन को जैसे सन्तोष ने अपना आश्रय दिया है। किन्तु यहाँ इस वृक्ष की छाया में कब तक बैठा रहूँगा ? जीवन की आयु इतनी छोटी तो नहीं, कि इस वृक्ष की छाया में बैठे ही बैठे समाप्त होजाय ! जीवन की आयु समाप्त करने के लिए तो मनुष्य को निरन्तर चलना चाहिए। किन्तु मैं चलूँ तो किस ओर चलूँ ? जगत की सभी दिशाओं में तो जैसे गाढ़ा अन्धकार-सा बरस रहा है।

[एक घुड़सवार सैनिक का प्रवेश।]

सैनिक—पथिक क्या तुमने देखा है, इधर से मृगों का एक दल गया है ?

शक्त—हाँ देखा है, इधर से तृषित और आतुल मृगों का एक दल गया है। किन्तु उन मृगों को क्यों पूछ रहे हो ?

सैनिक—मैंने उनका बहुत दूर से पीछा किया है पथिक ! पर वे सबके सब इतने चालाक और इतने द्रुतगामी, कि उनमें से एक भी मृग हाथ में न आया। शोक ! आज सन्ध्या को शिविर में पहुँचकर युवराज को क्या उत्तर दूँगा ?

शक्त—युवराज ! कौन युवराज सैनिक ? तुम किस युवराज के संबन्ध में बात कर रहे हो ?

सैनिक—युवराज सलीम के। वे दिल्ली से यहाँ वन में शिकार के लिये आये हैं। यहाँ से थोड़ी-ही दूर पर उनका शिविर है।

शक्त—युवराज सलीम ! सैनिक ! क्या तुम्हारे युवराज अपने हाथों से शिकार नहीं करते ? दूसरों के किए हुए शिकार से उनके मन को सन्तोष होता है ?

सैनिक—वाह ! तुमने भी खूब कही ! जान पड़ता है, युवराज के



साहस और शक्ति के संबंध में अभी तक तुमने कुछ भी नहीं सुना ! अरे, युवराज सलीम तो बड़े-बड़े वन-पतियों का जीवन अपने एक ही लक्ष्य में समाप्त कर देते हैं ।

शक्त (व्यंग्य से)—मैं जानता हूँ सैनिक ! किन्तु यह तो बताओ, तुम्हारे युवराज आज शिकार के लिये स्वयं वन में क्यों नहीं आये ?

सैनिक—आज उनका शरीर अस्वस्थ है पथिक !

शक्त (मनही मन)—दिल्ली सम्राट् अकबर के पुत्र सलीम ! मेवाड़ के शत्रु ! चित्तौर की स्वाधीनता-वैभव के विध्वंसक !! तो क्या मैं उनके पास चलूँ ? नहीं, अपने ही हाथों अपने घर को न उजाड़ूँगा, मेवाड़ के विध्वंस की आकांक्षा रखने वालों के पास न जाऊँगा ! वन में भटकूँगा, संसार की कर्कश ठोकरें खाऊँगा, किन्तु मातृ-भूमि के शत्रुओं से न मिलूँगा। मातृ-भूमि ! किन्तु वह तो अब महाराणा प्रताप के चरणों की चेरी है, उनके संकेतों पर नाचने वाली एक निर्जीव कठपुतली है । इसीलिये तो उसने, जब महाराणा प्रताप का दण्ड-वज्र मेरे सिर पर गिरा, तब एक क्षण के लिये भी मुझे अपनी गोद में स्थान न दिया ! जब उसके हृदय में मेरे प्रति ममता नहीं, तब फिर मैं ही ममता की मूर्ति बन कर संसार में कब तक विचरण करता रहूँगा ! स्वार्थी और षड़यंत्र-प्रिय संसार में जीवित रहने के लिये स्वार्थ और षड़यंत्र का अवलम्बन लेना ही पड़ेगा ।

सैनिक—पथिक ! तुम मौन क्यों हो गये ?

शक्त (कुछ सोचकर)—सैनिक ! क्या तू मुझे अपने युवराज से मिला सकेगा ?

सैनिक— क्यों नहीं ? मेरे युवराज बड़े दयालु हैं । वे छोटे-बड़े सभी से बड़े प्रेम से मिलते हैं ।

शक्त—तो चलो सैनिक, मुझे भी आज उनके प्रेम और करुणा की अत्यन्त आवश्यकता है । [प्रस्थान]

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—प्रताप की झोपड़ी

समय—दिन का प्रथम प्रहर

[झोंपड़ी में चिंतित प्रताप]

प्रताप (स्वगत)—पराधीन मेवाड़ ! उसकी स्वाधीनता का सूर्य कब उदय होगा ! मेवाड़ के स्त्री-पुरुष और बच्चे उस सूर्य के प्रकाश-दर्शन के लिये जैसे लालायित से हो रहे हैं। बलिदान और जागृति के तीव्र-गामी रथ पर सवार होकर वे अपने उस प्रिय सूर्य के सन्निकट पहुँचना चाहते हैं। किन्तु अभी नहीं ! जब तक समय-देवता अपनी शंख न फूँक दें, तब तक मेवाड़ियों के जागृत प्राण-समुद्र को किसी भाँति उछलने से रोक ही रखना चाहिये।

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी (सिर झुकाकर)—महाराणा !

प्रताप—क्या है प्रहरी !

प्रहरी—महाराणा, अम्बर के राजा मानसिंह आये हैं।

प्रताप—मानसिंह ! मातृ-भूमि के गौरव को विदेशियों के हाथों में बेच देने वाला कायर मानसिंह ! प्रहरी ! जाकर उसे मेरा यह आदेश सुना दे, कि प्रताप की पवित्र झोपड़ी को पाप-पंक में सने हुये अपने चरणों

से अपवित्र न कर ! यह झोंपड़ी तुम्हारे लिये नहीं, उन लोगों के लिये है, जो रूखी-सूखी रोटियों में मातृ-भूमि के सम्मान का दर्शन करते हैं, कंगाली और फ़कीरी में भी उसके गौरव की रक्षा करते हैं। (कुछ सोचकर) अच्छा, ठहर ! जब वह कुल-कलंक द्वार पर आ ही गया है; तब उसका कुछ न कुछ स्वागत-सत्कार भी होना चाहिये। जा, कुमार अमरसिंह को मेरे पास बुला ला।

[प्रहरी का प्रस्थान]

प्रताप (स्वगत)—मातृ-भूमि के गौरव को बेंच कर इसने दासता खरीदी है। अकबर की कृपा की वेदी पर इसने वंश-मर्यादा की बलि चढ़ाई है। सोलापुर विजय करके लौटा है, जान पड़ता है अकबर की कृपा की शराब पीकर मुझ पर उस विजय का प्रभुत्व प्रकट करने आया है। नहीं तो वह आता ही क्यों ? क्रूर, कंगाल मेवाड़ को अपना सुनहला भेष दिखलाकर उसके हृदय में दुख की आग उत्पन्न करने आया है, अकबर की कृपा की रुपहली चादर को ओढ़कर प्रताप की कंगाली को खिझाने आया है। किन्तु उस भूले हुए दासता के स्वान को क्या मालूम, कि प्रताप और मेवाड़, दोनों अपनी वास्तविकता को पहचानते हैं, अपनी कंगाली के महत्त्व को जानते हैं।

[प्रहरी के साथ अमर का प्रवेश]

अमर—क्या है पिता जी ? क्या आपने मुझे स्मरण किया है ?

प्रताप—हाँ, मैंने तुम्हें बुलाया है अमर ! तुमने सुना, अम्बर के राजा मानसिंह आये हैं।

अमर—हाँ पिता जी, मैंने भी सुना है।

प्रताप—तो तुम जाकर उनका स्वागत करो ! उन्हें सम्मान-पूर्वक स्थान देकर उनकी आव-भगत करो।

अमर—और आप पिता जी ?

प्रताप—मैं ! मैं उसका मुख देखना अपने लिये महान् कलंक समझता हूँ अमर ! वह रोटियों का क्रीत दास है। उसने वंश-मर्यादा और देश-गौरव को बेंचकर विदेशियों की कृपा मोल ली है। उसने मातृ-भूमि का अपमान किया है। वह देश-द्रोही है, कुल-कलंक है। यदि वह मुझे पूछे तो कह देना, आज महाराणा का चित्त अस्वस्थ है, उनके मस्तक में कुछ पीड़ा है।

अमर—तो मानसिंह के सेवा-सत्कार का प्रबन्ध किस स्थान पर किया जाय ? पिताजी ! क्या इसी झोंपड़ी में ?

प्रताप—नहीं अमर, यह झोपड़ी मानसिंह के लिये नहीं, यह झोपड़ी उन लोगों के लिए है, जो देश की स्वाधीनता-वेलि को अपने रक्त से सींचना जानते हैं। दास-वृत्ति धारी खान-पान के लिए झोपड़ी के सामने वाले विस्तृत मैदान में राजा की तम्बू तनवा दो। स्वर्ण और चाँदी के चमकदार बरतनों में उसे खाना खिलाओ। उसका सम्मान करो ठीक वैसा ही, जैसा सम्राटों के पुजारी और मातृ-भूमि के शत्रु लोलुप-व्यक्ति पसन्द किया करते हैं।

अमर—जो आज्ञा पिताजी !

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्त्तन]



दूसरा दृश्य

स्थान—राजसी तम्बू

समय—दोपहर

[मानसिंह अपने प्रमुख सर्दारों के साथ भोजन करने बैठे हैं। कुमार अमर अपने कुछ सर्दारों के साथ उनका सेवा-सत्कार कर रहे हैं।]

अमर—जो कुछ रूखा-सूखा मेरी झोपड़ी में उपस्थित था, उसे आपके सामने ला दिया है राजाजी ! राज-महलों के सुस्वादु भोजन के सामने इसमें सन्देह नहीं, कि यह आपको अत्यन्त हेय ज्ञान होता होगा।

मानसिंह—यह क्या कह रहे हो कुमार ! मेरा भाग्य इतना सुन्दर कहाँ, जो मुझे मेवाड़ की ये रूखी-सूखी रोटियाँ खाने को मिलें ! इसका स्वाद, और इनकी प्राप्ति तो विरले ही मनुष्यों के भाग्य में लिखी होती है। खैर, इन बातों को जाने दो कुमार ! यह तो बताओ, महाराणा प्रताप कहाँ हैं ?

अमर—आज उनका चित्त अस्वस्थ है राजाजी ! मस्तक में कुछ पीड़ा-सी हो रही है।

मानसिंह—किन्तु मैं अपने हृदय में उनके दर्शनों की चिर-प्यास छिपाकर यहाँ आया हूँ कुमार ! क्या वे इतने अस्वस्थ हैं, कि यहाँ थोड़ी देर के लिए आ भी नहीं सकते।

अमर—वे आने में विवश हैं राजाजी ! उनके मस्तक में आज भयंकर पीड़ा हो रही है।

मानसिंह—नहीं कुमार, मैं उनका अतिथि हूँ। मस्तक में भयंकर पीड़ा होने पर भी थोड़ी देर के लिए उन्हें यहाँ आना ही चाहिए। तुम जाओ, और उन्हें मेरे दर्शन-आग्रह की सूचना दो।

अमर—मैं आपके दर्शन-आग्रह की सूचना देने जाता हूँ राजाजी! किन्तु महाराणा का चित्त आज अधिक अस्वस्थ है।

[अमर का प्रस्थान]

मानसिंह (धीरे से) —क्यों सर्दार, क्या तुम जानते हो, प्रताप और शक्त में विद्रोह की अग्नि कैसे उत्पन्न हुई थी ?

सर्दार—हाँ राजा जी, जानता हूँ। वह एक बहुत साधारण-सी बात थी। अहेरिया उत्सव के दिन दोनों भाइयों ने एक वन-शूकर का पीछा किया था। दोनों ने साथ ही वन-शूकर पर अपने-अपने बाण चलाये। शूकर आहत होकर भूमि पर गिर पड़ा। बस, उसी शूकर के शव को लेकर दोनों भाइयों में झगड़ा हो गया। झगड़े ने इतना भयंकर रूप धारण किया, कि दोनों एक दूसरे के प्राण-संहार के लिये उद्यत हो उठे!

मानसिंह—किन्तु महाराणा प्रताप ने शक्त को निर्वासन का दण्ड क्यों दिया सर्दार!

सर्दार—जिस समय दोनों भाई एक दूसरे के प्राण-संहार के लिये अत्यन्त प्रयत्न कर रहे थे, पुरोहित ने इस गृह-विद्रोह को शान्त करने के लिये अपनी छाती में छूरी मार कर आत्महत्या कर ली! महाराणा ने पुरोहित की मृत्यु का अपराध शक्त-ही के सिर पर लगाया था।

मानसिंह—किन्तु महाराणा ने शक्तसिंह को निर्वासन का दंड देकर बहुत ही अनुचित किया सर्दार! वह दिल्ली सम्राट् अकबर से जाकर मिल गया है। उसे पाने से अकबर के लिये मेवाड़ के विध्वंस का मार्ग अब अधिक सरल बन गया है। [अमर का प्रवेश]

मानसिंह—क्या हुआ कुमार ? क्या महाराणा प्रताप मुझ पर कृपा करके दर्शन देने के लिये यहाँ आ रहे हैं ?

अमर—नहीं राजन्! वे विवश हैं। उनकी मस्तक-पीड़ा ने उन्हें इस समय अधिक आकुल बना दिया है।



मानसिंह-(कुछ क्रोध से)—वे विवश हैं! इतने विवश हैं, कि दिल्ली सम्राट् अकबर की शक्ति मानसिंह को अपना दर्शन भी नहीं दे सकते। यह अपमान है, अनादर है!! इस अपमान की आग अवश्य भड़केगी, यह अनादर काल की भाँति प्रचण्ड बनकर अवश्य मेवाड़ की ओर दौड़ेगा! मैं राजमहलों के सुस्वादु भोजन को त्याग कर महाराणा की रूखी-सूखी रोटियाँ खाने आया था! क्यों? किस लिये? दुर्दिन में आ ग्रस्त मेवाड़ को सम्मान प्रदान करने के लिये, उसे सम्राट् के अनुग्रह का पात्र बनाकर संसार में गौरवान्वित करने के लिये!! किन्तु उसने जान बूझकर, सोच-समझकर जैसे अपने सम्मान के घड़े में ठोकर मारी हो! उसकी यह भर्त्सना असह्य है, निन्दा की उसकी यह प्रकृति अत्यन्त पीड़क है!! दिल्ली सम्राट् की शक्ति-शाली सत्ता क्या इसे कभी क्षमा कर सकेगी?

अमर—क्रोध न कीजिये राजन्! यदि महाराणा अस्वस्थ न होते तो वे यहाँ अवश्य आते। इसमें अपमान और अनादर की रंचमात्र भी भावना नहीं है, हम लोगोंने बड़े परिश्रम और प्रेम से आपके भोजन का प्रबन्ध किया है। क्या आप उस पर तनिक भी ध्यान न देंगे?

मानसिंह—चुप रहो अमर! मुझे रहस्य के गाढ़े अन्धकार में ले जाने का प्रयत्न न करो। मैं सब कुछ जानता हूँ। उसी तरह जानता हूँ जिस तरह लोग प्रकाश और ज्योति को जानते हैं। तेरा प्रयत्न निष्फल है, तेरा साहस व्यर्थ है। मैं दिल्ली सम्राट् अकबर की विशाल शासन-सत्ता का संचालक हूँ। राजनीति की गूढ़ गुन्थियाँ मेरे चरणों पर लोटती हैं, शासकों और देशी-नरपतियों की शक्तियाँ मेरे संकेतों पर नाचती हैं। मैं भली-भाँति जानता हूँ, कि अपमान और अनादर की निगूढ़ परिभाषा क्या है? महाराणा प्रताप के मस्तक में पीड़ा है! बिल्कुल झूठ, बिल्कुल असत्य!! यह क्यों नहीं कहते, कि महाराणा प्रताप मुझे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। मेरे साथ बैठकर भोजन करने में अपमान का अनुभव करते हैं। किन्तु उनके

हृदय की यह घृणा और उनके हृदय का यह अपमान उन्हीं के लिये भयंकर शत्रु प्रमाणित होगा अमर ! एक दिन वे अपने इसी शत्रु के उपद्रवों से पीड़ित होकर पश्चात्ताप करेंगे, और अपनी इस महा-अनर्थ-कारिणी भूल पर प्रायश्चित के पवित्र आँसू बहायेंगे।

[प्रताप का आवेग के साथ प्रवेश]

प्रताप— सिंह की मांद में गीदड़ की ललकार ! अपनी बे-लगाम की जुबान को बन्द कर कुल-कलंक ! आतिथ्य सेवा की गुरुता को समझ कर अब तक तेरी बातें हलाहल के कडुये घूँट के समान पीता रहा। किन्तु अब तू मर्यादा की सीमा से अधिक दूर निकल गया। इतनी दूर निकल गया, जहाँ तेरे पाप-पूर्ण हृदय को अपमान, घृणा और भर्त्सना के काँटो से सोचने में किसी को रंचमात्र भी संकोच न होना चाहिए। दासता के द्वार पर वृत्ति की पुकार लगाने वाला श्वान चला था मेवाड़ को गौरव प्रदान करने, उसे दासता के स्वामी का कृपा पात्र बनाने ! मेवाड़ ऐसे गौरव और ऐसी कृपा पर तो घृणा से ठोकरें मारता है। उसकी सृष्टि तो तुम्हारे ऐसे स्वार्थ-लोलुपों के लिये की गई है, जो सुख और सन्तोष की नींद सोने के लिये वंश-गौरव को बेंच कर रोटी का टुकड़ा ख़रीदते हैं।

मानसिंह—इतना अपमान, इतनी भर्त्सना !! पर नहीं, यह मेवाड़ के लिये काँटे बिछाये गये हैं, इसके सर्व-नाश के लिये एक धधकते हुये अग्नि-कुण्ड की सृष्टि की गई है। मेवाड़ अब इस अग्नि-कुण्ड की भयंकर लपटों से न बच सकेगा। वह भस्म होगा, और उसकी गोद में अब खण्डहर निवास करेंगे।

प्रताप—लोलुप सत्ता के चरणों का भिखारी मान ! तू अपनी कलंकिनी रसना की तलवार किस पर चला रहा है ? उस पर, जो चन्द्रमा की भाँति शुभ्र और न्याय की भाँति सुन्दर है। यह तेरा अक्षम्य दुस्साहस तुझे महापतन के सागर में ढकेल देगा, और ढकेल देगा, उस दास-वृत्ति पोशक सत्ता को, जिसकी शक्ति की शराब पीकर तू विक्षिप्त बन गया है।

मेवाड़ तेरी इस विक्षिप्त अवस्था का सर्वान्त करने की अपने में पर्याप्त शक्ति रखता है !

मानसिंह—मेरा सर्वान्त ! कौन करेगा महाराणा ! मेवाड़ ? यह भ्रम है, अन्धकार और अज्ञान की कोरी कल्पना है ! कहीं यह भ्रम और कल्पना मेवाड़-ही का सर्वान्त न कर डाले !

प्रताप—मेवाड़ के सर्वान्त की कामना लेकर घूमने वाला श्वान, जा, चला जा यहाँ से। मेवाड़ के घर में ही उसका अपमान ! प्रताप इसे नहीं बर्दाश्त कर सकता ! जा कुल-कलंक, मेरी आँखों के सामने से शीघ्र दूर हट जा ! वंश और गौरव की हत्या करने वाला जा ! जा कुत्ते की भाँति अपने सम्राट् के चरणों पर लोट ! प्रताप तेरी उस शक्ति को, जिसके मद में तू उन्मत्त बन उठा है, मेवाड़ के गौरव के सामने कौड़ियों के मोल-सा अत्यन्त तुच्छ समझता है।

मानसिंह—जाता हूँ ! किन्तु यह कहे जाता हूँ, कि मेवाड़ को विध्वंस कर दूँगा, उसके अभिमान को चूर्ण करके धूल में मिला दूँगा, और बना दूँगा, मेवाड़ के महाराणा प्रताप को वनों का अधिवासी, पथों का भिखारी, और दुःखों का संसार।

[जाने के लिये तैयार]

प्रताप—कुल-कलंक ! कायर !! देश-द्रोही !! प्राणों में इतना दुस्साहस, हृदय में अकबर की शक्ति और सत्ता का इतना महान् गर्व ! प्रताप की तलवार आज अतिथि समझ कर अपने स्थान में रह गई ! किन्तु कभी उसकी रुधिर-प्यास तेरे रसना-रक्त से अवश्य बुझेगी !

[प्रस्थान]

[पट–परिवर्त्तन]

तीसरा दृश्य

स्थान—प्रेमसिंह का निवास-स्थान

समय—दोपहर

[प्रेमसिंह की स्त्री कुशला द्वार पर बैठ कर खाँड़ा स्वच्छ कर रही है।]

कुशला (स्वगत)—कुल-कलंक मान ! दासता के चमकदार टुकड़ों पर मेवाड़ का गौरव खरीदने आया था ! महाराणा प्रताप ने अच्छा ही किया, उसे कुत्ते की भाँति अपने द्वार से दुरदुरा दिया ! वह अब जाकर अपने सम्राट् की गोद में लोटे, और मेवाड़ के विध्वंस की कायर-संगीत गाये ! किन्तु मेवाड़ का विध्वंस वज्र से भी अधिक कठोर, और माया से भी अधिक रहस्य-मय है। उसकी गोद में सहस्रों चंडिकायें निवास करती हैं, उसके सिर पर सहस्रों चंडिकाओं का वरद्-हस्त डोलता है।

[प्रेमसिंह का प्रवेश]

प्रेमसिंह—अरे कुशला ! आज तुझे क्या होगया है ? तेरे केश खुले हैं, हाथ में खाँड़ा है, आकृति जैसे चण्डी की प्रतिमा-सी ज्ञात हो रही है। तेरे इस स्वरूप को देखकर तो मेरे प्राण हिम होते जा रहे हैं !

कुशला—तो जाकर मानसिंह की भाँति दिल्ली सम्राट् अकबर की चरण-रज मस्तक पर मलो ! यहाँ मेवाड़ में तो अब घर-घर तुम्हें ऐसा ही भयानक स्वरूप दिखाई पड़ेगा !

प्रेमसिंह—शोक ! महाराज जगमल के मदिरा-प्रिय मेवाड़ पर ऐसी भयानक आपदा ! अब न वह खुमारी, न वह संगीत और न वह उन्माद वर्षा ! तलवार और खाँड़े की कर्कश झँकार चारों ओर कानों को फोड़े डालती है। किन्तु यह तो बता कुशला, कि तू आज खाँड़े की धार को

क्यों स्वच्छ कर रही है ! अरे पगली ! कहीं तीव्र–धार की रगड़ से तेरी कोमल उँगुलियाँ न कट जायँ !

कुशला—कट जाने दो ! उँगुलियों के कट जाने के भय से मैं अपने कर्त्तव्य की पाठशाला बन्द कर दूँ ? आज जब मेवाड़ की सभी सुहागिनें अपने-अपने पतियों को रण-स्थल में भेजने के लिए खाँड़े की धार स्वच्छ कर रही हैं, तब मैं ही क्यों चुप रहूँ ? मैं भी अपने सुहागिन जीवन को सार्थक करूँगी, उसे संसार में धन्य बनाऊँगी !

प्रेमसिंह—नादान ! अपने हाथों अपना ही सर्वनाश ! अरे युद्ध में जाकर फिर लौटकर आता है कौन ? यदि तुझे मेरे प्राणों की ममता नहीं, तो अपने श्रृंगार की ममता तो कर ! न हाथों में ये सतरंगी चूड़ियाँ रह जायँगी, और न भाल पर यह सिन्दूर ! और फिर युद्ध अभी होता ही कहाँ है ? मेवाड़ में तो अभी युद्ध की कोई चर्चा नहीं !

कुशला—मृत्यु से भयभीत होनेवाले को युद्ध का क्या पता ? जब से मानसिंह मेवाड़ से विक्षुब्ध होकर गया है; पल-पल पर युद्ध की घोषणा हो रही है। उसी घोषणा को सुनकर मेवाड़ सजग हो उठा है। स्त्री-पुरुष सभी तलवार और खाँड़ों की झँकार से प्राणों में उत्साह और शक्ति जागृत करने लगे हैं। चारों ओर शक्ति और साहस के उफनाते हुए सागर को देखने पर भी यदि तुझे युद्ध का पता न चला तो आश्चर्य ही है !

प्रेमसिंह—महाराणा प्रताप ने मानसिंह का अपमान करके जो भूल की है, उसका परिणाम उन्हें भोगना-ही पड़ेगा ! सोते हुए सिंह को जगाया तो उन्होंने है, फिर उसका शिकार कौन होगा ? यदि उनके स्थान पर महाराज जगमल होते तो मान की ऐसी प्रतिष्ठा करते, कि उसके बदले में उन्हें सम्राट् अकबर की ओर से कई रियासतें पुरस्कार में मिल जातीं !

कुशला—बड़े ज्ञान के पुतले निकले तुम और तुम्हारे महाराज जगमल ! बन्द करो इन बातों को ! इन वातों को सुनने के लिये मेरे

पास कान नहीं! लो, हाथ में इस खाँड़े को लो, और धार पर अपनी उँगुलियों को रगड़ कर उसकी तीव्रता की परीक्षा करो!

प्रेमसिंह—नहीं कुशला, यह मुझसे न हो सकेगा। मेरी उँगुलियाँ इतनी मूल्य-हीन नहीं, कि मैं इन्हें खाँड़े की तीव्र-धार पर रगड़ूँ! जानती हो, मैंने इन्हीं के द्वारा अमूल्य शराब की प्यालियाँ अपने ओठों से लगाई हैं। मैं इन्हें कष्ट न दूँगा! कुशला! तू इन बेचारियों की सुकुमारता पर कृपा की वर्षा कर!

कुशला—न, आज मेवाड़ की समस्त स्त्रियाँ वज्र की भाँति कठोर हो गई हैं। एक नहीं, शत-शत पर्वतों को उठा कर उन्होंने अपनी छाती पर रख लिया है। उनके हृदय में न पुत्र की ममता है, और न पति का प्रेम! वे केवल एक राग जानती हैं—पति और पुत्रों का मातृ-भूमि के चरणों पर बलिदान! तुम्हें खाँड़े की धार पर उँगुलियाँ रगड़नी ही होंगी।

प्रेमसिंह—नहीं, कुशला, क्षमा करो। मैं तुम्हारा पति हूँ! अपने पति को खाँड़े की धार पर न घसीटो। इसके अतिरिक्त और चाहे जो आदेश दो! सर-आँखों से बजा लाने के लिये तैयार हूँ! किन्तु खाँड़े की तीव्रधार से उँगुलियों का स्पर्श! कुशला! मेरे प्राणों में भूकम्प आ रहा है, मेरी रक्षा करो।

कुशला—अच्छा तो इस लहंगे को पहन कर हाथों में इन चूड़ियों को डाल लो। घूँघट काढ़ कर घर के कोने में जाकर बैठ रहो। तुमसे जब खाँड़े की धार की परीक्षा न हो सकेगी, तो मैं ही इसकी परीक्षा लूँगी, मैं ही इसकी तीव्र-धार पर अपनी उँगुलियाँ रगड़ूँगी!

प्रेमसिंह—मुझे स्वीकार है कुशला! मैं खाँड़े की तीव्र-धार से बचने के लिये सहर्ष स्त्री का स्वरूप धारण कर लूँगा! लावो दो मुझे लहँगा, और चूड़ियाँ!

[प्रेमसिंह स्त्री बन कर घर में बैठता है।]

कुशला (स्वगत)—सुहागिन होते हुये भी मैं विधवा-सी हूँ। आज जब मेवाड़ की समस्त सुहागिन स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों की वीरता के दोल पर आनन्द के झूले झूल रही हैं, मैं अपने अभागे-जीवन पर आँसू बहा रही हूँ। न जाने ये वीरता की प्रति-मूर्ति जगत में मेरे लिये कहां रक्खे हुये थे! ऐसेही पुरुष-सिंहों से मातृ-भूमि के मस्तक पर कलंक का टीका लगात है!

[गजसिंह का प्रवेश ।]

गजसिंह—कुशला, आज तो तू चंडी के रूप में दिखाई दे रही है! क्या प्रेमसिंह को मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठाने का उपक्रम कर रही है?

कुशला—नहीं, उन्हें नहीं, महाराज जगमल को। महाराज जगमल जबसे अपने स्वत्व-अधिकारों से वंचित किये गये हैं, तब से मैं देखती हूँ, न जाने कितने व्यक्तियों को शराब की एक बूँद भी न मिली, मेवाड़ में कभी आनन्द-मृदंग की एक थपकी भी सुनाई न पड़ी! जीवन का कहाँ वह सरस-आनन्द, और कहाँ यह कठोरता! मुझ से शराब के उन तृषित प्राणियों का करुण-क्रन्दन न सुना जायगा। मैं अपने इसी तीव्र-धार वाले खाँड़े को लेकर राजभवन में जाऊँगी, और महाराज जगमल को राजसिंहासन पर बैठा कर सन्तोष की साँस लूँगी।

गजसिंह—तब तो तू सचमुच कल्याणी है कुशला! चलो, मैं भी तुम्हारे साथ प्रताप की कुटी में चलूँगा और प्रताप के सिर से राजमुकुट उतारने में शक्ति-भर तुम्हारी सहायता करूँगा!

कुशला—क्यों न हो? तुम्हारा साहस ओठों से चूमने योग्य है गजसिंह! आखिर तुम वीरता के अवतार, महाराज जगमल के विश्वास पात्र सैनिक हो न! उन्हें राजसिंहासन पर बैठाने के लिये, तुम शक्ति का प्रदर्शन न करोगे, तो करेगा कौन? किन्तु शक्ति-प्रदर्शन के पहले मैं तुम्हारी दृढ़ता की परीक्षा लेना चाहती हूँ!

गजसिंह—चाहे जो परीक्षा ले लो ! महाराज जगमल को राज-सिंहासन पर बैठाने के लिये मैं अपने अमूल्य प्राणों का भी बलिदान कर सकता हूँ। इतने दिनों तक उनकी आनन्द-मयी छाया में पला, तो क्या उनके लिये इतना भी न कर सकूँगा !

कुशला—क्यों नहीं ? न करने से मानवता को कलंक लगेगा न ! अच्छा तो मेरे खाँड़े की धार की तीव्रता की परीक्षा के लिये इस पर अपनी उँगुलियाँ तो रगड़ो !

गजसिंह—किन्तु इससे और महाराज जगमल के राजसिंहासन की प्राप्ति से क्या सम्बन्ध कुशला ? खाँड़े की धार पर उँगुलियाँ रगड़ने से महाराज जगमल को राज-सिंहासन तो मिल नहीं जायगा ?

कुशला—किन्तु तुम्हारे कर्तव्य-दृढ़ता की परीक्षा तो हो जायगी !

गजसिंह—यह परीक्षा बड़ी भयंकर है कुशला ! तुम्हीं सोचो, मैं दिन-रात सुकुमारता की गोद में पला, मदिरा से खेलता रहा और पासा, द्यूतक्रीड़ा, इत्यादि मधुर-व्यसनों को अपने जीवन का साथी बनाये रहा। फिर तुम्हारी इस परीक्षा की कसौटी पर खरा कैसे उतर सकता हूँ ?

कुशला—तुम सचमुच दया के पात्र हो गजसिंह ! किन्तु क्या अपने महाराज जगमल को मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न न करोगे ?

गजसिंह—करूँगा क्यों नहीं कुशला ! किन्तु खाँड़े की धार की परीक्षा लेने के लिये मुझसे न कहो ! आज तक मेरी आँखों ने कभी रक्त के दर्शन भी न किये !

कुशला—चिन्ता न करो ! लो इस लहँगे को पहनलो ! और घूँघट निकाल कर घर के कोने में जाकर बैठ रहो। मैं अभी महाराज जगमल को मेवाड़ के राज-सिंहासन पर बैठाने का सफल प्रयत्न करती हूँ !

गजसिंह (प्रसन्न होकर)—कुशला तू धन्य है ! तू चाहे जो न करदे ! सफलता तेरी आकृति से टपकी पड़ती है। महाराज जगमल को

राजसिंहासन पर बैठाने के प्रयत्न के सम्बन्ध में मुझे जो आदेश दो, मैं उसकी पूर्ति करने के लिये उद्यत हूँ ।

[गजसिंह स्त्री का रूप धारण करके एक कोने में बैठता है ।]

कुशला (स्वगत)—ये मातृ-भूमिके कलंक हैं, गोद की चन्द्रमा के श्याम धब्बे हैं। मातृ-भूमि उन्हें देखकर लज्जा से गड़ जाती होगी, चेतना को खोकर मूर्छना की गोद में सो जाती होगी !

[वीर कुमार का प्रवेश]

वीरकुमार—कुशला ! आज तेरे वेश में बलिदान जाग रहा है। ऐसी वीर भावना तो मैंने तुम्हारी आकृति पर कभी नहीं देखी ! क्या तू भी वीर-पत्नियों की पँक्ति में बैठकर अपने सुहागी जीवन का वास्तविक सुख लूटना चाहती है ?

कुशला—सुख लूटना चाहती हूँ, या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती वीर कुमार ! किन्तु आज मेरे वेश में बलिदान अवश्य जाग उठा है। जानते हो क्यों ? इसलिये, कि आज मैंने एक कायर सैनिक को मारकर दो राजपूतस्त्रियों का उद्धार किया है ।

वीरकुमार (आश्चर्य से)—कायर सैनिक ! मेवाड़ में ! उसे मारकर तुमने दो राजपूत रमणियों का उद्धार किया है ! वे रमणियाँ कौन हैं कुशला ! उन्हें तुमने कहाँ रक्खा है ?

कुशला—यहीं, अपने घरके भीतर । क्या तुम भी उन्हें देखोगे ?

वीरकुमार—हाँ कुशला, मैं भी उनकी दुःख-कथा सुनना चाहता हूँ। गीदड़ में इतना साहस ! उसने सिंहिनी पर आक्रमण किया !

[कुशला वीरकुमार को भीतर लेजाकर दोनों को दिखाती है। वीरकुमार अट्टहास करता है। गजसिंह और प्रेमसिंह दोनों लज्जित होकर मातृ-भूमि के उद्धार की शपथ लेते हैं ।]

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्त्तन]

चौथा दृश्य

स्थान—सम्राट् अकबर का राजभवन

समय—प्रभात

[चिन्तित रूप में सम्राट् अकबर]

अकबर (स्वगत)—सारा भारतवर्ष मेरे चरणों पर लोट रहा है ! बड़े-बड़े शक्ति-शाली हिन्दू-नृपति मेरे चरणों की रज को पवित्र समझकर अपने मस्तक पर मलते हैं ! शक्ति और शासन-सत्ता की जगत में विचित्र महिमा है । कोई उसके प्रताप से भय-भीत होकर उसका अनन्य-पुजारी बनता है, तो कोई उसकी मुग्धकारी मायाविनी वंशी की गति पर रीझ कर ! किन्तु धन्य है मेवाड़, और धन्य है मेवाड़ की गरीब गोद में पलने वाले महाराणा प्रताप! शक्ति और शासन-सत्ता की दोनों चालें उन पर और उनके मेवाड़ पर व्यर्थ प्रमाणित हुईं ! न तो मेवाड़ ने मुगल-साम्राज्य की अधीनता स्वीकार की, और न महाराणा प्रताप ने सम्राट्-पद-गौरव का संगीत ही गाया ! मेरा साम्राज्य अत्यन्त विशद है, किन्तु मेवाड़ के अभाव में उजड़ा हुआ है, मेरा सम्राट्-जीवन सहस्रों कण्ठ से प्रशंसित है, किन्तु प्रताप के मुखकी प्रशंसा के विना गरिमा-हीन-सा है। मैं अपने जीवन के इस अभाव को पूरा करूँगा, मेवाड़ के गौरवमय भाल को झुकाकर अपने साम्राज्य की प्रभुता बढ़ाऊँगा ! मेवाड़ ने अपने आप धधकती हुई अग्नि में आहुति डाली है, महाराणा प्रताप ने राजा-मानसिंह का अपमान करके मुगल-साम्राज्य की सोती हुई शक्ति-रूपी सिंहिनी को आक्रमण करने के लिए आकुल बना दिया है। मेवाड़ का दुर्भाग्य, महाराणा प्रताप के दुर्दिन !! प्रताप का भाई स्वयं शक्तसिंह जादू के जाल में फँसकर माया की तरंगों में डुबकियाँ लगा रहा है।

उसी को मेवाड़ के विध्वंस का साधन बनाऊँगा, उसी से मेवाड़ की सेना के रहस्यों को समझकर मेवाड़ को धूल में मिलाऊँगा! (स्पष्ट) प्रहरी!

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी—हाँ श्रीमान्!

अकबर—जाओ, कुमार शक्त से कहो, कि तुम्हें सम्राट् ने याद किया है!

प्रहरी—जो आज्ञा श्रीमान्!

[प्रहरी का प्रस्थान]

अकबर (स्वगत)—शक्तसिंह! बेचारा कितना भोला है! जानता है, मुग़ल-साम्राज्य की विकराल शक्तियाँ मेवाड़ के विध्वंस के लिए सदैव मुँह बाये तैयार रहती हैं, किन्तु फिर भी वह मुग़ल-साम्राज्य के विधाता सम्राट् अकबर की शरण-छाया में आया है। ऐसे हो भोले, भटके और पथ-भ्रान्त व्यक्तियों की शक्ति से तो मुग़ल-साम्राज्य की नींव सुदृढ़ हुई है! आज शक्तसिंह के हाथों से भी उस नींव पर मिट्टी चढ़ेगी और ऐसी मिट्टी चढ़ेगी, कि उससे मुग़ल-साम्राज्य अधिक शक्ति-शाली ही नहीं, बल्कि अधिक गौरान्वित भी हो उठेगा!!

[शक्तसिंह का प्रवेश]

शक्तसिंह (नम्रता से)—क्या सम्राट् ने मुझे याद किया है?

अकबर—हाँ शक्त, मैंने तुम्हें बुलाया है। जबसे तुम सलीम के साथ यहाँ आए हो, मैं बराबर इस प्रयत्न में था, कि मैं तुम्हारे विक्षुब्ध मन को किसी भाँति शान्ति प्रदान करूँ! आज तुम्हारे मन की शान्ति के लिए मैंने औषधि खोज निकाली है! केवल तुम्हारे मनकी तुष्टि के लिए शक्त,—केवल तुम्हारे हृदय की विक्षुब्धता को शान्त करने के लिए-आज मैं अपनी समस्त सेना को ज्वाला-मुखी के विकराल मुँह पर खड़ा करने जा रहा हूँ! बोलो शक्त, क्या तुम भी मेरी कुछ सहायता कर सकोगे?

शक्त—क्यों नहीं सम्राट् ! सचमुच ! क्या आप मुझे इतना गौरव प्रदान करते हैं ? मैं प्राणपण से आप की सहायता करने के लिए तैयार हूँ। कहिये, आप मुझसे क्या चाहते हैं ?

अकबर—शक्त ! महाराणा प्रताप ने तुम्हारा अपमान किया है, तुम्हें निर्वासन का दण्ड देकर तुम्हारे साथ अमानुषिक अत्याचार किया है। मैं उनसे तुम्हारे इस अपमान का बदला चुकाऊँगा, मेवाड़ के उठे हुये मस्तक को चूर्ण करके तुम्हारे मन को तुष्टि प्रदान करूँगा ! तुम प्रताप की सेना के रहस्यों को राजा मान को बता दो ! तुम्हारी केवल इतनी ही सहायता से मैं मेवाड़ को विध्वंस कर दूँगा, उसके अभिमान को चूर्णकर सदा के लिये उसके मस्तक को अपने चरणों पर झुका लूँगा !

शक्त (कुछ सोचकर)—न, मुझसे यह न हो सकेगा सम्राट् ! मैं महाराणा प्रताप से असन्तुष्ट अवश्य हूँ, किन्तु मैं मेवाड़ का सर्वनाश नहीं चाहता। मैं नहीं चाहता, मेरी मातृ भूमि पैरों से कुचलदी जाय, उसके जन्म-सिद्ध अधिकारों को रौंद कर उसे जन्म-जन्मान्तर के लिये दासता की कर्कश जंज़ीरों से बाँध दिया जाय !! मुझे क्षमा कीजिये सम्राट ! मैं अपने हाथों अपनी जननी जन्म-भूमि को विष का प्याला नहीं पिला सकता !

अकबर—भोले न बनो शक्त ! छलिया संसार को छल और प्रपंचों ही से परास्त करने का पाठ पढ़ो ! तनिक विश्वकी ओर तो आँख उठाकर देखो ! उसका विशाल रथ छल और प्रपंचों के चक्रों के सहारे ही दिन-रात परिभ्रमण किया करता है। महाराणा प्रताप ने तुम्हें निर्वासन का दण्ड दिया। तुम समझते हो उसमें छल और प्रपंचकी भावना नहीं थी ! नहीं शक्त, उन्होंने तुझे देश की सीमा से वाहर निकाल कर अपने जीवन का कांटा दूर कर दिया है ! अब मेवाड़ की राज-सभा में अशान्ति की आग भड़काने वाला उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं। अब वे मेवाड़ में अखण्ड राज करेंगे, उसके राज्य-सुखों का सुख से जीवन पर्यन्त उपभोग करेंगे !

शक्त—मेरे हृदय में अशान्ति और विद्रोह की आग न पैदा कीजिये सम्राट्! मैं मेवाड़ का रहने वाला राजपूत हूँ! मेवाड़ी राजपूत अपने प्राणों से भी अधिक अपनी मातृ-भूमि को चाहता है, और चाहता है अपने देश के गौरव को। वह बड़े-बड़े साम्राज्यों को उस पर निछावर करता है, बड़े-बड़े सत्ताधारियों को उसके सामने तुच्छ समझता है। मैं मरुस्थल में भटकूँगा, दर-दर अन्न और जल की यांचा करूँगा, किन्तु मातृ-भूमि को अपने ही हाथों दासता के कठोर बन्धन में न बँधाऊँगा! मैं उसे दासता के बन्धन में बँधा कर रहूँगा किस लोक में सम्राट्! अशान्ति हृदय को सन्तोष न लेने देगी, वेदना प्राणों को रह-रह कर व्याकुल करेगी। संसार मुझ पर हँसेगा, अपनी गोद में रहने के लिये एक अँगुल भी स्थान न देगा!

अकबर—संसार में कोरी भावुकता से काम नहीं चला करता शक्त! भावुकता मनुष्य को अकर्मण्यता देती है, उसकी जीवन-शक्तियों को नष्ट कर उसके मानस में कायर-भावनाओंका उद्रेक करती है। संसार का उद्देश्य है, प्रतिस्पर्द्धा, ईर्षा और उन्नति की आकांक्षा! संसार में जीने वालों को संसार के उद्देश्यों के पथ पर चलना ही पड़ेगा! शक्त, तुम क्षत्रिय हो, और हो मेवाड़ के क्षत्रिय! मेवाड़ के क्षत्रिय गौरव की वेदी पर अपने प्राणों की बलि चढ़ा देते हैं, जीवन की समस्त आकांक्षाओं को त्याग कर पथ के भिखारी बन जाते हैं! किन्तु आज तुम उसी गौरव को पैरों से कुचल रहे हो शक्त! महाराणा प्रतापने तुम्हारा अपमान किया, तुम्हें एक दीन-हीन भिखारी की भाँति देश से बाहर निकाल दिया, किन्तु फिर भी तुम बदला लेने से दूर भागते हो! बदला लेना मानव जीवन का प्रमुख धर्म है शक्त! संसार में इसी भावना का दिन-रात चक्र-सा चलता रहता है।

शक्त—मुझे काँटों में न घसीटिये सम्राट्! मेरे हाथों में मेरी अपनी ही मातृ-भूमि की हत्या के लिये छूरी न दीजिये दिल्ली के बादशाह!

जाइए, सुख से मेवाड़ का विध्वंस कीजिये, उसके वैभव को धूल में मिलाकर विजय-संगीत गाइए ! किन्तु मुझे इस प्रयत्न में न सम्मिलित कीजिये; मुझसे मेवाड़ के सर्वनाश की प्रार्थना न गँवाइये !!

अकबर—भूलते हो शक्त ! मातृ-भूमि एक निर्जीव कठपुतली है। वह उसकी उपासना करती है, जिसके हाथों में शक्ति की वागडोर होती है। वह उसके संकेतों पर नाचती है, जिसके हाथों में सत्ता का महाचक्र होता है। प्रताप ने तुम्हें निर्वासन का दण्ड दिया; किन्तु फिर भी मातृ-भूमि ने तुम्हें अपनी गोद में स्थान न दिया; प्रताप के उस अत्याचार के विरुद्ध तनिक भी सर ऊँचा न किया। जानते हो क्यों ? इसलिये कि वह प्रताप के चरणों की चेरी है, उनके संकेतों पर नाचने वाली निर्जीव कठपुतली है ! न्याय हो; अन्याय हो, धर्म हो; अधर्म हो, सत्य हो; असत्य हो, चाहे कुछ भी हो, वह प्रताप का समर्थन करेगी, उनके ही पक्ष का महाशंख बजायेगी। उसका सम्मान और उसका प्यार तुम्हें तब तक न मिलेगा, जब तक तुम प्रताप की भाँति शक्तिशाली बन कर अपने हाथों में दण्ड का वज्र नहीं धारण कर लेते !!

शक्त—बस कीजिये सम्राट् , बस कीजिये !! लाइए अपने हलाहल का प्याला ! मैं उसे अपने हाथों अपनी ही मातृ-भूमि को पिलाऊँगा। लाइये, अपनी कामनाओं की तीव्र-धार वाली छूरी ! मैं अपने हाथोंही जननी जन्म-भूमि की हत्या करूँगा ! हत्या करूँगा, अपने लिये नहीं; मुगल साम्राज्य के लिये, दिल्ली सम्राट् अकबर की प्रसन्नता के लिये ! संसार मेवाड़ के विध्वंस में स्वार्थ का अभिनय देखेगा, और यह कहेगा, कि मुग़ल–साम्राज्य के विस्तार की नीव में न जाने कितने व्यक्तियों की मानवता की बलि दी गई है।

अबकर—चाहे जो कहो शक्त ! किन्तु मुग़ल–साम्राज्य सदैव तुम्हारे हित की कामना करता है। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह केवल तुम्हारे हित के वशीभूत होकर। केवल तुम्हारे ही लिये मैं ज्वालामुखी के अग्नि



स्फुलिंगों से खेलने जा रहा हूँ; उत्तुंग और शक्तिशालिनी तरंगों से संयुक्त समुद्र में अपनी तरणी छोड़ने जा रहा हूँ। तुम्हें इस भाँति स्वार्थ का कलंक लगा कर मेरी शक्ति और साहस की रज्जु को ढीली न बनानी चाहिये।

शक्त—क्षमा कीजिये सम्राट्! वह मेरी भूल थी! अमृत का जीवन-दायी प्याला अभागों के अतिरिक्त और किसी को कड़ुआ नहीं ज्ञात हुआ करता। बुलाइए, राजा मानसिंह को! मैं उनके साथ युद्ध-भूमि में चल कर महाराणा प्रताप की सेना के सभी रहस्यों को उन्हें भलि-भाँति समझा दूँगा!

अकबर—तुमसे ऐसी ही आशा है शक्त! जब मुग़ल-साम्राज्य तुम्हारे हित की आकांक्षा को लेकर ज्वालामुखी के मुख पर खड़ा होने के लिये उद्यत है, तब तुम्हें भी उसकी नीव सुदृढ़ करनी ही चाहिये। (सिर दूसरी ओर घुमा कर)—प्रहरी!

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी—आज्ञा दीजिये श्रीमान्!

अकबर—जाओ, राजा मानसिंह को अभी मेरे पास भेज दो!

[प्रहरी का प्रस्थान]

अकबर (शक्त की ओर देख कर)—शक्त! चिन्ता न करो। मैं जानता हूँ, तुम मेवाड़ के क्षत्रिय हो। मैं यह भी जानता हूँ, कि तुम अपनी मातृ-भूमि को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हो। तुम विश्वास रक्खो, मैं तुम्हारी मातृ-भूमि को विध्वंस न करूँगा, तुम्हारे स्वतंत्रता-वैभवों को न उजाड़ूँगा! मुझे तो महाराणा प्रताप के अभिमान को चूर्ण करना है; उनके उठे हुये मस्तक को अपने चरणों पर झुकाना है!

[मानसिंह का प्रवेश]

मानसिंह—क्या सम्राट् ने मुझे याद किया है?

अकबर—हाँ राजा साहब, मैंने आप को बुलाया है! महाराणा प्रताप ने शक्त को निर्वासन का दण्ड दिया, और आपको अपमान की

भयंकर ज्वाला में जलाया। मैं अब इसे नहीं बर्दाश्त कर सकता! मुग़ल-साम्राज्य की तरी को खेने वालों का जो अपमान करेगा, उससे साम्राज्य बदला चुकायेगा, उसके राज्य-वैभवों को सर्वनाश की आग में झोंक कर विजय का संगीत गायेगा! जाइए, राजा साहब, एक बहुत बड़ी सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण कर दीजिये। शक्तसिंह भी युद्ध में आपके साथ जायँगे! शाहज़ादा सलीम को भी अपने साथ ले जाइए। मेवाड़ के एक मात्र स्वत्त्वाधिकारी प्रताप को ऐसा पाठ पढ़ाइए, कि फिर कोई मुग़ल-साम्राज्य के संरक्षकों का अपमान करने का दुस्साहस न करे, फिर कोई कभी अपने दर्प-पूर्ण वचनों से दिल्ली सम्राट् की छत्र-छाया में रहने वालों के हृदय को खुरेंचने की धृष्टता न करे!

मानसिंह—श्रीमान्! मुझे इतना गौरव-प्रदान करते हैं! मेरे मान–अपमान का इतना ध्यान करते हैं! इतना ध्यान करते हैं, कि हृदय में अपमान की आग लगाने वाले अभिमानी प्रताप से बदला चुकाने के लिये युद्ध में मेरे साथ अपने प्यारे पुत्र सलीम को भी भेज रहे हैं! सच-मुच आज मेरा जीवन धन्य हो उठा है, आज मेरे शरीर के लोम-लोम से मुग़ल-साम्राज्य और उसके सम्राट् के प्रति कृतज्ञता का सावन बरस रहा है!

अकबर—यह तो मेरा कर्त्तव्य है राजा साहब! मैं साम्राज्य के संरक्षकों की प्रसन्नता के लिये प्रतिक्षण सब कुछ करने के लिये तैयार रहता हूँ! महाराणा प्रतापने आपका अपमान करके समस्त साम्राज्य के हृदय में एक हलचल-सी उत्पन्न करदी है। सम्राट् या शाहज़ादा, सिपाही या सैनिक, किसी को देखिये, उसी के हृदय से आग का एक बवण्डर-सा उठ रहा है। सच बात तो यह है, कि महाराणा प्रताप ने आपका नहीं, समस्त मुग़ल–साम्राज्य का अपमान किया है!

मानसिंह—प्रताप ऐसा ही उद्दण्ड अभिमानी है श्रीमान्! किन्तु अब उसका अभिमान भंग होगा; उसका उठा हुआ मस्तक लज्जा से नीचे

झुकेगा !! उसने सुलगती हुई आग में फूँक मारी है, सोते हुये केसरी को छेड़ने का दुस्साहस किया है !

अकबर—हाँ राजा साहब ! चाहे मुग़ल-साम्राज्य की समस्त शक्ति युद्ध की भयंकर अग्नि में स्वाहा हो जाय, किन्तु प्रताप का उठा हुआ मस्तक अवश्य झुके, आकाश में दर्प के साथ उड़ती हुई मेवाड़ की विजय-पताका अवश्य मुग़ल-साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करे !

मानसिंह—यही होगा श्रीमान् ! जब महाराणा प्रताप ने अपने-ही बन्धुओं को अपना प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बना लिया है, तब अब उसके सर्व-नाश के दिन भी सन्निकट ही हैं। वह दिन दूर नहीं, जब सम्राट् की आकांक्षाओं पर फूल बरसेंगे, आकाश में उनकी कामनाओं के शत-शत चाँद खिलेंगे !

[मानसिंह का शक्त के साथ प्रस्थान]

अकबर (स्वगत)—मातृ-भूमि और देश के शत्रुओं, जाओ ! अपने हाथों से अपनी-ही मातृ-भूमि को विष का प्याला पिलाओ ! अपने हाथों से अपनी-ही जननी जन्म-भूमि के गले पर छूरियाँ फेरो ! एक प्रताप है, जो मातृ-भूमि के लिये प्राण हथेली पर लिये फिरता है, और एक तुम हो, जो मातृ-भूमि के सर्वनाश के लिये खाइयाँ खोदते फिरतेहो ! वह कुछ भी हो, मनुष्य रूप में देवता है, मानवता की जगमगाती हुई ज्योति है ! तुम कुछ भी हो, क्रूर हो, कलंक हो, और हो देश-जाति के प्रबल शत्रु !

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्त्तन]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—प्रताप की झोंपड़ी

समय—प्रभात

[महाराणा प्रताप अपने कुछ प्रमुख सर्दारों के साथ बैठे हुए हैं]

प्रताप—कृष्णजी ! घरों को छोड़ने, बस्तियों को उजाड़ने और हरियाली से परिपूर्ण मैदानों को वीरान बनाने का मैंने जो आदेश निकाला है, मेवाड़ का निवासी उसका किस भाँति पालन कर रहे हैं ?

चन्दावतकृष्ण—न पूछिये महाराणा, सारा मेवाड़ स्मशान की भाँति भयानक बन गया है। बस्तियाँ उजड़ गई हैं, घर खँडहर बन गये हैं। शस्य-श्यामला-भूमि विधवा-सरीखो श्रृंगार-हीन बन गई है। कहीं कुछ भी नहीं दिखाई देता। यदि कुछ दिखाई देता है, तो शिलाओं, खण्डहरों की दीवालों और भूमि के ऊपरी स्तरों पर स्वाधीनता का मंत्र, बलिदान का मोहन गान ! ऐसा ज्ञात होता है, मानों महाराणाके आदेश से उजड़ी हुई मेवाड़ की पवित्र प्राण-भूमि स्वाधीनता के मंत्र और बलिदान के गान से रणचण्डी को प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रही हो।

प्रताप—धन्य है मेवाड़ के वीर राजपूत ! अपनी स्वाधीनता के लिये अपने-अपने गृहों को छोड़कर पर्वत की कन्दराओं में जा बसे हैं ! स्त्रियों, बालकों और वृद्धों से भरी हुई अपनी-अपनी बस्तियों को उजाड़ने में ममता ने तनिक भी उन्हें बाधा न दी। उन्होंने शस्य से परिपूर्ण अपने खेतों को बेमोह वीरान कर दिया, फलों से संयुक्त उपवनों को विध्वंस करके वन की भाँति बीहड़ बना दिया। क्यों कृष्णजी, मेवाड़ के अधिवासी ! आज यह सब क्यों कर रहे हैं ? क्या वे विक्षिप्त बन गये हैं ? हाँ आज वे सब कुछ विक्षिप्त बन गये हैं ! स्वाधीनता की अमर-

देवी ने अपनी जागृति की शराब पिलाकर आज उन्हें सचमुच उन्मत्त बना दिया है। इसीलिये वे आज गृह, पुत्र और स्त्री की मोह-माया का त्याग कर बलिदान का गान गा रहे हैं, विसर्जन की सदा लगा रहे हैं!

एक सभासद—यह सब महाराणा के हृदय को अपना निवास बनाने वाली स्वाधीनता के भावना की अमर-ज्योति का प्रभाव है! मेवाड़ के निवासी आज उस ज्योति के प्रकाश में अपना जीवन देख रहे हैं, जीवन को जगाने वाली जागृति का दर्शन कर रहे हैं!

दूसरा सभासद—महाराणा को व्रती-वेश में देखकर मेवाड़ियों ने भी व्रत का संकल्प लिया है, और संकल्प लिया है मेवाड़ की शस्य-श्यामला-भूमि ने। उसने भी मेवाड़ के स्त्री-पुरुषों की भाँति अपने वैभवों को उजाड़ कर स्वाधीनता के लिए अपने को अत्यन्त कंगाल बना लिया है!

प्रताप—नहीं बन्धुओं! यह तो मेवाड़ की भूमि और उस भूमि के अंक में निवास करने वाले मनुष्यों के सहज स्वभाव की बात है! इस भूमि ने अनेक वार जागृति-प्रकाश की सृष्टि की है, यहाँ के मनुष्यों ने सहस्रों वार बलिदान के गीत गाये हैं!!

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी (सिर झुका कर)—महाराणा! एक गुप्तचर आवश्यक सम्वाद लेकर आया है।

प्रताप—उसे मेरे पास आने दो! [प्रहरी का प्रस्थान]

चन्दावत—गुप्तचर न जाने कौन सा सम्वाद लेकर आया है!

प्रताप—इसके अतिरिक्त और दूसरा सम्वाद ही क्या हो सकता है कृष्णजी, कि मेवाड़ के गौरव को न सह सकनेवाले अकबर की विशाल-सेना मेवाड़ की ओर प्रस्थान कर चुकी है, और राजा मानसिंह अधिनायक के पद से उस सेना को मेवाड़ के विध्वंस के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। [गुप्तचर का प्रवेश]

गुप्तचर—महाराणा की जय हो ! महाराणा, अकबर की विशाल सेना राजा मानसिंह और शाहज़ादा सलीम के अधिनायकत्व में मेवाड़ की ओर प्रस्थान कर चुकी है, उस सेना के साथ कुमार शक्त भी हैं !

प्रताप—कैसा शुभ सम्वाद है वीरों ! मेवाड़ की पवित्र प्राण-पृथ्वी लाल अम्बर ओढ़ने के लिये पहले-ही से तैयार होकर बैठी है। चलो, हम सब लोग उसका श्रृङ्गार करें, उसे लाल वस्त्रों से ढँक कर रणचण्डी का गीत गायें ! ऐसा गीत गायें, कि मुग़ल-साम्राज्य कम्पित होजाय, अकबर मेवाड़ियों का लोहा मान ले, और राजा मानसिंह ? उस कुल-कलंक और जाति-द्रोही को यह ज्ञात हो जाय कि मेवाड़ के पानी में वह पुरुषार्थ, वह शक्ति और वह विकट साहस है, जो स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के अमृत में भी नहीं !

चन्दावत—सचमुच आज पर्व का दिन है ! आज फिर मेवाड़ की मही-माता का लाल चूनरी से श्रृङ्गार होगा ! आज फिर रणचण्डी मेवाड़ के आँगन में नृत्य करेगी, और आज फिर मेवाड़ियों को महीमाता के चरणों पर बलिदान होनेका सुनहला अवसर प्राप्त होगा !

एक सभासद्—वर्षों से म्यान में सोई हुई तलवारें फिर अँगड़ाइयां ले-लेकर उठेंगी, फिर मेदिनी मुण्डों की माला धारण करेगी, और फिर माँ चण्डी के खप्पर से अग्नि की लाल लपटें निकलेंगी !

दूसरा सभासद्—घर-घर में फिर बलिदान का गान होगा, स्त्रियां और मातायें फिर अपने-अपने पति और पुत्रों के भाल पर युद्ध आज्ञा का तिलक काढ़ेंगी, और जीवन को अमर तथा जन्म को सार्थक बनाने का वीरों को फिर अलभ्य अवसर मिलेगा !

चन्दावत—युद्ध की रचना किस स्थान पर की जायगी महाराणा ! किस स्थान की मेदिनी को वीरों के रक्त से स्नान करने का गौरव प्रदान किया जायगा !!



प्रताप—हल्दी-घाटी को कृष्णजी ! इसके पहले मैं उस स्थान का भली-भाँति निरीक्षण कर चुका हूँ ! वहीं रण का वाद्य बजेगा, वहीं वीरों के रक्त की पवित्र गंगा प्रवाहित होगी, और वहीं चारो ओर से शत्रुओं को घेर कर उनके दांत खट्टे किये जायँगे ! गावो वीरों, बलिदान का भैरव राग गावो ! हल्दी-घाटी की युद्ध-भूमि हम सब का आवाहन कर रही है। पर्वत की ऊँची-ऊँची श्रेणियाँ मस्तक उठाकर हम सबको अपने पास बुला रही हैं ! चलो, भैरव राग गाते हुये हम सब हल्दी-घाटी की युद्ध-भूमि में चलें और रक्त-दान से चण्डी-माता को प्रसन्न करके उनसे विजय का शुभ आशीर्वाद लें !

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्त्तन]

———:※:———

छठा दृश्य

स्थान—हल्दी-घाटी, रण-भूमि

समय—दोपहर

[युद्धभूमि में प्रताप और चन्दावत]

प्रताप—भयंकर युद्ध हो रहा है, भयंकर ! मेदिनी रक्त से लाल हो उठी है। हल्दी-घाटी का विशद मैदान लाशों से पट-सा उठा है। राजपूत वीर बिजली की भाँति अपनी-अपनी तलवारों को चमका कर शत्रुओं की धज्जियां उड़ा रहे हैं। किन्तु अभी तक मानसिंह नहीं दिखाई पड़ा कृष्णजी ! न जाने वह कुल-कलंक किस पर्दे की ओट में छिपा हुआ है। उसका रुधिर पान करने के लिये मेरी तलवार जैसे उद्विग्न-सी हो रही है!

चन्द्रावत—कायरता की गोद में पलने वाला गीदड़ सिंह के सन्मुख कैसे जा सकता है महाराणा ! बेचारा अपने प्राणों के मोह से सैनिकों की ओट में कहीं छिपा होगा !

प्रताप—चाहे जहां कहीं छिपा हो कृष्णजी, मैं उसे खोज निकालूँगा। उसके रक्त से आज अपने तलवार की प्यास बुझाऊँगा ! उसने युद्ध की भयंकर आग जलाकर सहस्रों वीरों की आहुति दी है, आज मैं उसकी आहुति दूँगा ! उसकी आहुति से चण्डी-माता का खप्पर कुछ अधिक प्रकाशमय होगा, उसमें से कुछ अधिक लाल-लपटें निकलेंगी !

[प्रताप शत्रु-सैनिकों के मध्य में जाने को उद्यत]

चन्द्रावत—नहीं, महाराणा! उस ओर न जाइये। उस ओर शत्रु-सैन्य पर्वत की भाँति दीवाल बना कर अचल–रूप से खड़ा है। उसे तोड़ना, उसे तोड़कर भीतर जाना, जान-बूझ कर प्राणों पर खेलना है। देखिये महाराणा, उस ओर देखिये !! दीवाल बना कर खड़े हुये सहस्रों शत्रु–सैनिक आपही की ओर आँख उठा कर देख रहे हैं। उनकी आँखों में भयंकर हिंसा, भयंकर क्षोभ और भयंकर ईर्षा नाच रही है। महाराणा ! उस ओर न जाइए !!

प्रताप—उस ओर न जाऊँ ? क्यों न जाऊँ कृष्णजी ! युद्ध-भूमि से मानसिंह को जीता निकल जाने दूँ। नहीं, यह नहीं हो सकता ! मानसिंह सहस्रों, लाखों और चाहे कोटि-कोटि सैनिकों के मध्य में छिपा हो, किन्तु मैं उसे खोज निकालूँगा, उसके रुधिर से अपनी तलवार की प्यास बुझाऊँगा, और चन्डी-माता के चरणों पर उसकी बलि चढ़ा कर मेवाड़ के मुख को उज्वल करूँगा। मैं शत्रुओं की उस अचल–दीवाल को विध्वंस करने के लिये जाता हूँ कृष्णजी ! आप इस ओर रह कर युद्ध के मोर्चे को सँभालो।

[प्रताप का प्रस्थान]



चन्दावत (स्वगत)—अद्भुत साहस है, अद्भुत शक्ति है; अद्भुत पराक्रम है !! जागृति और जीवन के रथ पर प्रति-क्षण सवार से रहते हैं ! मेवाड़ की मही-माता ! तू धन्य है ! तेरी जिस धूलि में लोट-लोट कर ऐसे नर-सिंहों ने शक्ति संचय की है, उसकी समता स्वर्ण के अनमोल वैभव भी कभी नहीं कर सकते ! किन्तु अकेले महाराणा कब तक इस युद्ध की ज्वाला को जगाते रहेंगे ! सर्वनाश चारों ओर खुल कर खेल रहा है। मुग़लों की नवीन सेनायें बादलों की भाँति उमड़ी आ रही हैं ! थोड़े से राजपूत सैनिक कब तक रण–चण्डी का खप्पर अपने रक्त से भरते रहेंगे ! न जाने कब उसकी तृषा शान्त होगी, न जाने कब उसके खप्पर की ज्वाला बुझेगी !!

[एक राजपूत सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—कृष्णजी ! महाराणा शत्रु सैनिकों से घिर गये हैं। उनका शरीर लड़ते-लड़ते जर्जर हो उठा है। अंग-अंग से रक्त के फ़ौवारे से छूट रहे हैं। किन्तु फिर भी वे उन्मत्तों की भाँति तलवार चलाते जा रहे हैं, विक्षिप्तों की भाँति शत्रुओं के मध्य में घुसते जा रहे हैं।

चन्दावत—धन्य हैं महाराणा प्रताप, आप धन्य हैं !! स्वदेश के लिए ऐसा अद्भुत त्याग आज तक मैंने कहीं नहीं देखा ! जाओ सैनिक, उस त्याग–देवता के साथ मिलकर युद्ध करो। जाओ, उसकी इच्छा पर अपने को बलिदान करो। उसकी आकांक्षा है, स्वाधीनता ! मेवाड़ रहेगा तो स्वाधीन होकर ! नहीं श्मशान की भाँति भयानक और उजड़े हुये वन की भाँति बीहड़ बन जायगा।

[सैनिक का प्रस्थान]

चन्दावत—(स्वगत)—युद्ध की ज्वाला ! तू और धधक ! चण्डी-माता के खप्पर की आग ! तू और अरुणिमा धारण कर !! मैं आरहा हूँ अपना बलिदान चढ़ाने, तेरे खप्पर में अपने रक्त की वर्षा करने ! चित्तौर ! अब सदा के लिये तुझ से बिदा ! मेवाड़ की मही-माता ! अब

सदा के लिये तुझ को प्रणाम ! हल्दी-घाटी की युद्ध-भूमि आज मेरी मृत्यु-शय्या बनेगी ! आज मैं शत्रु-सैनिकों से घिरे हुये महाराणा प्रताप का राजमुकुट उनके मस्तक से उतारूँगा। उतारूँगा, रण में खेल खेलने के लिये, वीरों की मौत मरने के लिये, और मेवाड़ की निःशेष आशा को जीवन-मयी बनाने के लिए !

[प्रस्थान]

प्रताप (युद्ध में)—सलीम ! तू सावधान हो जाय ! मेरे बर्छे का यह तीव्र-आघात तेरी मृत्यु का कारण होगा !

सलीम—शरीर जर्जर हो उठा है, अङ्ग-अङ्ग से रक्त की वर्षा हो रही है ! फिर भी यह अभिमान, फिर भी यह दर्प !!

[बर्छे का आघात]

सलीम—ओह ! बर्छा क्या है, मृत्यु का शस्त्र ! बेचारा हाथी उसके आघात से जैसे प्राण-शून्य-सा हुआ जाता है।

[सलीम का पलायन]

प्रताप—रण; कायरों के लिये नहीं, वीरों के लिये है ! दिल्ली-सम्राट् अकबर के विलास-भवनों में पला हुआ बेचारा शाहज़ादा सलीम ! क्या जानता था कि युद्ध में प्राणों की बाज़ी लगानी होती है, जीवन पर खेलना होता है और आघातों-यंत्रणाओं से कर्कश मोर्चा लेना पड़ता है !

[चन्दावत का प्रवेश]

चन्दावत—इसे तो मेवाड़ के महाराणा प्रताप ही जानते हैं ! जो शरीर में सैकड़ों घाव हो जाने पर भी रण-स्थल में केसरी की भाँति गरज रहे हैं, जो रक्त के झरने बनकर युद्ध-भूमि में शत्रुओं के लहू की सरिता बहा रहे हैं, और जो सैकड़ों आघातों से आहत होने पर भी शत्रुओं के सिर पर अपना वज्र-दण्ड छोड़ रहे हैं !

प्रताप—किन्तु अब साथ ही मृत्यु के शंख का रव भी सुनाई पड़ रहा है कृष्ण जी ! जान पड़ता है, यही हल्दी-घाटी की युद्ध-भूमि मेरी

मृत्यु–शय्या होगी, और यही मेवाड़ी-माता के चरणों पर मेरा बलिदान चढ़ेगा !

चन्द्रावत—मेवाड़ की दुखिया माता के धन, उसकी आशाओं की ज्योति, ऐसा न कहिये महाराणा ! भृत्य के रहते स्वामी का बलिदान ! वीर-पुत्रों के रहते मातृ–भूमि के अहित का आयोजन !! संसार में आज तक यह किसी ने न देखा ! चन्द्रावत शरीर में रक्त का एक बूँद रहते हुए कभी आपका बलिदान न होने देगा ! आपका बलिदान, बलिदान नहीं महाराणा, मातृ–भूमि के विध्वंस की सृष्टी होगी ! देखिये, समस्त मेवाड़ की ओर देखिये ! सारा मेवाड़ आपकी ओर आशाभरी दृष्टि से देख रहा है ! क्या आप उसकी आशाओं का अपहरण करेंगे ? क्या आप उसके जीवन-प्रकाश को छीन कर उसे अन्धा बना देंगे ? नहीं, महाराणा, नहीं !! लाइए दीजिये अपना राजमुकुट मुझे ! एक दिन इस राजमुकुट को मैंने आपके मस्तक पर रक्खा था, आज मैं उसीको आपसे वापस माँगता हूँ ।

प्रताप—ले लीजिये राजमुकुट चन्द्रावत जी, ले लीजिये ! एक नहीं सहस्रों राजमुकुट आप पर निछावर होंगे, आपके चरणों का चुम्बन करेंगे ! आपका प्रण चन्द्रमा की भाँति उज्वल और सत्य की भाँति सुन्दर है । मुझे राजमुकुट न चाहिये कृष्ण जी ! मुझे पुजारी की भाँति मेवाड़ की मही-माता की सेवा करने दीजिये, वीर की भाँति युद्ध में मरने दीजिए, और सजग बलिदानी की भाँति चण्डी–माता के चरणों पर अपना बलिदान चढ़ाने दीजिये !

चन्द्रावत—और समस्त मेवाड़ को अन्धकार से ढँक जाने दूँ; उसकी आशा-कलिकाओं को तुहिन से झुलस जाने दूँ ; और होने दूँ जननी-जन्मभूमि की छाती पर विदेशियों का नग्न-नाच ! नहीं महाराणा, नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा । मैं अपनी आँखों से मेवाड़ का विध्वंस न देख सकूँगा ! लाइए दीजिए अपना राजमुकुट ! मैं इस राजमुकुट को शीस

पर धारण कर मेवाड़ पर गिरनेवाली गाज को रोकूँगा, इन्द्र के विनाशकारी वज्र को अपने मस्तक पर लूँगा !

प्रताप—यह नहीं हो सकता कृष्णजी ! मैं रण से पीठ दिखाकर मेवाड़ की मही–माता को कलंकित न करूँगा ! आज तक जिस वीर मर्यादा की मैंने बड़े यत्न से रक्षा की है, उसे केवल प्राणों के भय से सर्वनाश की अग्नि में न डालूँगा ! आप लेलें अपना राजमुकुट, और लेलें अपने समस्त मेवाड़ को । किन्तु मुझे मेवाड़ पर मरने दीजिये, उसके पवित्र चरणों पर अपना बलिदान चढ़ाने दीजिए । इससे मुझे न वंचित कीजिए कृष्णजी, न वंचित कीजिए !

चन्दावत—मेवाड़ की आशाओं पर तुषार न डालिए महाराणा ! जाइए, युद्ध–भूमि से चले जाइए ! जाइए, प्यारे मेवाड़ के लिए जाइए ! जाइए, मेवाड़ की मही–माता के लिए जाइए !! जाइए, मेवाड़ को सर्वनाश की आग में जलने से बचाने के लिए जाइए !!! मेवाड़ की मही-माता अंचल हिला-हिला कर युद्ध–भूमि से अलग हो जाने का आपको आदेश दे रही है महाराण ! उस दुखिया की बात मानिए ! उसके हृदय को टुकड़े-टुकड़े न कीजिये, उसके जीवन को कंगाल न बनाइए ! देखिए, देखिए, वह रो रही है, युद्ध भूमि में आपको देखकर उसका हृदय कटा जा रहा है !!

[तलवार से प्रताप का राजमुकुट उतार कर अपने सिर पर धारण करते हैं।]

प्रताप—अभागे प्रताप की इतनी प्रतिष्ठा, मृत-प्राय व्यक्ति के लिए इतना सम्मान ! चन्दावत तू देवता है ! त्याग, निस्पृहता, बलिदान और कर्त्तव्य-पालन की ऐसी ज्योति को मैंने किसी मनुष्य में कभी नहीं देखा !

[शक्तसिंह का प्रवेश]

शक्तसिंह—अरे यह क्या ? यह तो महाराणा प्रताप के वेश में चन्दावत कृष्णजी ! मेवाड़ का राजमुकुट भी तो उन्होंने अपने सिर पर

धारण कर रक्खा है ! मुग़ल-सैनिक उन्हीं को महाराणा प्रताप समझ कर अपने क्रोध की भयंकर ज्वाला बुझा रहे हैं। ले क्रूर मुग़ल सैनिकों ने त्याग की उस प्रतिमा की हत्या भी कर डाली। चन्दावत कृष्ण अब संसार में कहीं देखने को न मिलेंगे। किन्तु नहीं, उनके त्याग और उनके प्रताप की ज्योति सदैव आंखों के सामने नाचती रहेगी ! धन्य हो वीर, धन्य हो ! अपनी माता के सच्चे लाल एक तुम हो, और एक मैं हूँ ! तुमने देश पर, देश के राणा पर, मातृ-भूमि पर, मातृ-भूमि की मर्यादा पर अपने को हँसते-हँसते बलिदान कर दिया। और मैं ? कुछ न पूछो, लज्जा से मस्तक भूमि में गड़ा जा रहा है ! बहुत दूर, तुमसे बहुत दूर वीर ! तुम स्वर्ग-कुसुम हो, पारिजात-पुष्प हो ! तुम्हारी हमारी समानता क्या ? किन्तु मेरी आँखों ने तुम्हारा बलिदान देखा है, मेरे कानों ने तुम्हारा भैरव-राग सुना है ! अब हम भी तुम्हारी ही शक्ति के सहारे तुम्हारे पास पहुँचने का साहस करेंगे वीर ! फिर अब हम मेवाड़ की जय बोलेंगे, मेवाड़ की मही-माता का गौरव-गान गायेंगे और गायेंगे तुम्हारे ही स्वर में, तुम्हारे ही लय से और तुम्हारे ही हृदय से। [दूसरी ओर देख कर]—भैय्या प्रताप ! शरीर पर रूप की चादर-सी पड़ी है। चेतक युद्ध-भूमि से विलग होकर हवा की भाँति भागा जा रहा है। धन्य हो, मेवाड़ के उज्वल रत्न धन्य हो !! हम और तुम-मेवाड़ की एक-ही धूलि में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं, किन्तु तुम हीरे निकले, और मैं काँच ! तुमने मातृ-भूमि के लिये संकट झेले, और मैंने उसके लिये खाइयाँ खोदीं। ओह ! मैं भूला हुआ था, मेरी चेतना-शक्ति पर भ्रान्ति का पर्दा पड़ा हुआ था। मैंने तुम्हें न पहचाना भैया, तुम्हारे स्वाभिमान के अर्थ को न समझ सका, त्याग के देवता !! मुझे क्षमा करो ! (सहसा आश्चर्य से) अरे ! इन दोनों मुग़ल-सैनिकों ने भैय्या का पीछा क्यों किया है ? क्या ये नराधम उन्हें हानि पहुँचा कर मेवाड़ की आशाओं का सदा के लिये अन्त कर देना चाहते हैं ? नहीं, शक्त की आँखों के सामने मेवाड़ की आशाओं का दीपक नहीं

बुझ सकता ! ये नराधम शक्त की रगों में रक्त रहते हुये मेवाड़ की निधि को तिमिर के गर्भ में नहीं छिपा सकते ! जिस निधि को बचाने के लिये चन्दावत कृष्ण ने अपना बलिदान किया है, शक्त उस निधि की रक्षा करेगा, उसे इन क्रूर मुग़ल-सैनिकों के पंजे से बचायेगा !!

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

स्थान-वन

समय-सन्ध्या

(शोकाकुल महाराणा प्रताप)

प्रताप—आह ! तुम भी इस असमय में चल बसे चेतक ! तुम्हें खोकर तो मैं निर्धन बन गया, प्राण-हीन सा हो गया। संग्राम में कर्कश आघातों की मार ने मुझे श्रान्त न बना पाया था, किन्तु तुम्हारी मृत्यु ने मुझे प्राण-हीन सा कर दिया। अंग-अंग शिथिल होते जा रहे हैं। इच्छा होती है, तुम्हारे शव के पास बैठ कर इसी प्रकार जीवन पर्यन्त आँसू बहाता रहूँ। तुम-सा अनन्य सार्थी अब विश्व में मुझे कहाँ मिलेगा चेतक! तुम कहने को मूक थे, किन्तु सचेतन मनुष्यों से कहीं अधिक अपने हृदय में कल्याण की भावना रखते थे। तुम्हारा कीर्ति-संगीत मनुष्य ही नहीं, हल्दी घाटी की ये घाटियाँ भी गायेंगी ! किन्तु आज तुम इतने निष्ठुर क्यों हो गये चेतक ! मेरी आँखों से पीड़ा के आँसू निकल रहे हैं, और तुम बोलते तक नहीं ! ओ चेतक, उठो !! मुझे अपनी



पीठ पर बैठा कर मेवाड़ की ओर भागो ! रण-स्थल में तो तुमने इतना स्नेह प्रदर्शित किया था ! मेरे शरीर से बहते हुये रक्त के झरने को देखकर अज्ञान मनुष्यों की भाँति आँसू बहाते थे; किन्तु अब बोलते तक नहीं ! तुम्हें क्या हो गया है चेतक ! क्या आज सचमुच तुम मूक बन गये ? नहीं, आज मेरी कायरता को देख कर तुम मुझसे रूठ गये ! जब मैं तुम्हारे योग्य न रहा, तब तुम मुझे छोड़ कर और किसी की खोज में चल बसे ! क्यों ? यही न ? अच्छा क्षमा करो, जीवन-साथी क्षमा करो ! प्रताप सचमुच कायर है, जाति का कलंक है !! आह !!

[दोनों मुगल-सैनिकों का प्रवेश]

एक सैनिक—देखें तो अब कहाँ भाग कर जाता है । घोड़ा भी गिरकर मर गया, घोड़ा क्या था, सन-सनाती हुई हवा ! पलक मारते कहाँ से कहाँ निकल आया !

दूसरा सैनिक—बेचारा युद्ध से भागकर अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता था, किन्तु मृत्यु पिण्ड छोड़ना ही नहीं चाहती । इसीलिए तो युद्ध से भागने पर मार्ग में घोड़ा भी मर गया । चलो, जल्दी बेचारे का काम तमाम करके उसके शोकाकुल जीवन का सदा के लिए अन्त करदें ।

[शक्तसिंह का प्रवेश]

शक्त—कायरों ! मेवाड़ के थके हुए सिंह के जीवन का अन्त करने के पहले तुम दोनों ही जहन्नुम की गोद में जा पड़ोगे । लो, कायर कुत्तों, लो ! इसकी इस सराहनीय वीरता का यह अद्भुत पुरस्कार है ।

[शक्त का आघात । दोनों सैनिकों की मृत्यु]

शक्त—भैय्या प्रताप ! मेवाड़ के मुकुट ! महाराणा प्रताप !

प्रताप (सचेत होकर)—कौन शक्तसिंह ! क्यों ? क्या बदला लेने आये ? आओ भाई, आओ !! बड़े आनन्द से, बड़े सुख से, और

बड़ी शान्ति से अभागे प्रताप से अपना बदला चुका लो ! प्रताप से बदला चुकाने के लिये इससे बढ़कर उपयुक्त अवसर अब कभी न मिलेगा। अब न प्रताप वह प्रताप है, और अब न उसकी भुजाएँ वह भुजाएँ हैं। अब प्रताप रण से विमुख प्रताप, कायर और निःसम्बल प्रताप !! अपनी तीव्र कटार निकाल कर शीघ्र उसकी छाती में घुसेड़ दो, उसके पाप-पूर्ण जीवन का सदा के लिये अन्त कर दो !!

शक्त—यह क्या कह रहे हो भैया ! अभागे शक्त को पाप की ज्वाला में अब और न जलाओ ! उसके मस्तक पर उसके काले-कारनामों का पंक अब और न उछालो !! वह आया है, मेवाड़ के राणा महाराणा से क्षमा की यांचा करने, उनकी स्नेहमयी गोद में बैठ कर अपने हृदय की ज्वाला शान्त करने, और उनकी वीरता की पवित्र-गंगा में नहाकर अपने कलुषित कल्मषों को धोने !! प्रतिहिंसा और बदला लेने की भावना का अब नाम न लीजिये भैया ! उसके उच्चारण मात्र से हृदय में ज्वाला छिटकती है, वेदना-मयी व्यथा उत्पन्न होती है।

प्रताप—शक्त ! शक्त !! तुम्हें आज क्या हो गया है ? क्या तुम अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गये शक्त ! तुम सम्राट् अकबर के कृपा-पात्र सैनिक हो। अपने सैनिक-पद से नीचे न गिरो शक्त ! मेरा सर्व-नाश करो, मेवाड़ को कुचलो, मेवाड़ी-माता के आसुओं पर हर्ष मनाओ, अट्टहास करो, मंगल-गान गाओ !!

शक्त—मेवाड़ के राणा, नहीं नहीं, भैया प्रताप ! क्षमा करो। हृदय जल रहा है, प्राण मूर्च्छित हो रहे हैं। बचाओ, मेवाड़ के आहत राणा ! बचाओ। अभागे शक्त को शान्ति की भीख दो, स्नेह का दान दो। उसे अपने चरणों पर लोटने दो, उसे अपनी गोद में बैठने दो। वह स्नेह का भूखा है, और भूखा है भाई के स्नेह का। अब न ठुकराओ भाई ! अब पाप के अधिक भयानक दृश्यों को न दिखाओ ! भाई ! क्षमा ! क्षमा !!

[साश्रुनेत्रों से प्रताप के चरणों पर गिरते हैं]

प्रताप—उठो, प्यारे भाई, उठो !! तुम्हारे प्यार-भरे भैया के सम्बोधन ने मेरे अंग-अंग को स्नेह-बन्धन से जकड़-सा लिया है। मैं अब सब कुछ भूल गया। ऐसा उन्माद, ऐसी मिठास ! अद्भुत संतृप्ति है, अद्भुत सन्तोष है !! पुकारो भाई, फिर पुकारो। भैया प्रताप ! भैया प्रताप ! भैया प्रताप !

[प्रस्थान]

[पटाक्षेप]

